समुद्र-तट के साथ-साथ एक लम्बी और अनिश्चित यात्रा—बस इतनी ही रूप-रेखा मन में लिये लेखक एक दिन घर से निकल पड़ा था। मोह उतना एक अनदेखे प्रदेश को देखने का नहीं, जितना अपने अन्दर की भटकन के अनुसार चलते जाने का था। इस लिए कब कहाँ वह रास्ते के किस स्टेशन पर उतर जायेगा, कब कहाँ रुकने की योजना बना कर अगले ही दिन वहाँ से चल देगा, इस का कुछ ठिकाना नहीं था। परिणाम था एक अछूता अनुभव—सामान्य यात्रा-अनुभवों से बहुत अलग—जो इस पुस्तक में लिपिबद्ध है।

निरन्तर बदलता मानसिक और भौगोलिक परिवेश, रोज़-रोज़ सामने आते कई-कई नये चेहरे, इन के कारण यह यात्रा पाठक के लिए भी उतना ही रोमांचक अनुभव है जितना लेखक के लिए रही है। गोआ के गिरजाघरों, चुन्देल के कॉफ़ी के बाग़ीचों और कन्या-कुमारी के सूर्योदय-सूर्यास्त के बीच एक भटकते मन की ये प्रतिक्रियाएँ इतनी आन्तरिक हैं कि इन के कारण इस यात्रावृत्त की गणना आज हिन्दी में इस विधा की सर्वश्रेष्ठ रचनाओं में होती है।

96

२२०
कहानी

८१५५

८१५५

पश्चिमी समुद्र-तट
के साथ-साथ
एक
यात्रा

आख़िरी चट्टान तक

२२०
कहानी

मोहन राकेश

६१५५

भारतीय
ज्ञानपीठ
प्रकाशन

लोकोदय ग्रन्थमाला : ग्रन्थांक-२६५
सम्पादक एवं नियामक :
लक्ष्मीचन्द्र जैन

Lokodaya Series : Title No. 265

AAKHIREE CHATTAN TAK

(Travelogue)

MOHAN RAKESH

Bharatiya Jnanpith Publication

Second Edition 1968

Price Rs. 3.00

©

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

प्रधान कार्यालय
९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७

प्रकाशन कार्यालय
दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५

विक्रय कार्यालय
३६२०।२१, नेता जी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

द्वितीय संस्करण १९६८
मूल्य ३.००

सन्मति मुद्रणालय
वाराणसी-५

२१०
कहानी

७१५५

रास्ते के दोस्तों को—

गोआ से कन्या-कुमारी तक की यह यात्रा दिसम्बर सन् बावन और फ़रवरी सन् तिरपन के बीच की गयी थी। यात्रा से लौटते ही मैं ने यह पुस्तक लिख डाली थी। उन दिनों हर चीज़ की छाप मन पर ताज़ा थी। पूरे अनुभव को ले कर मन में एक उत्साह भी था। इस लिए कहीं-कहीं अतिरिक्त भावुकता से अपने को नहीं बचा सका था। इस बार नये संस्करण के लिए पुस्तक को दोहराते समय पहले सोचा था कि मुद्रण की भूलों को ठीक करने के अतिरिक्त और इस में कुछ नहीं करूँगा। परन्तु समय के अन्तराल ने जहाँ प्रभावों को कुछ धुँधला दिया है, वहाँ मन में उन के प्रति एक तटस्थता भी ला दी है। इस लिए कुछ जगह थोड़ा-बहुत परिवर्तन अनायास ही हो गया है। पुस्तक का कुछ अंश मैं ने फिर से लिखा है। शेष में भाषा को जहाँ-तहाँ से छू दिया है। फिर भी मूलतः किसी तरह का परिवर्तन इस में नहीं हुआ। वह न तो उचित ही था, न अपेक्षित ही।

पहले संस्करण में ही कुछ जगह व्यक्तियों के नाम मैं ने बदल दिये थे। जहाँ सम्भव था, वहाँ नाम नहीं बदले। भास्कर कुरुप उस व्यक्ति का वास्तविक नाम है। श्रीधरन् एक बदला हुआ नाम।

— मोहन राकेश

आर-५२२, न्यू राजेन्द्र नगर,
नयी दिल्ली-५

वाण्डर लस्ट
दिशाहीन दिशा
अब्दुल जब्बार पठान
नया आरम्भ
रंग-ओ-बू
पीछे की डोरियाँ
मनुष्य की एक जाति
लाइटर, बीड़ी और दार्शनिकता
चलता जीवन
वास्को से पंजिम तक
सौ साल का गुलाम
मूर्तियों का व्यापारी
आगे की पंक्तियाँ
बदलते रंगों में
हुसैनी
समुद्र-तट का होटल
पंजाबी भाई
मलबार
बिखरे केन्द्र
कॉफी, इनसान और कुत्ते
बस-यात्रा की साँझ
सुरक्षित कोना
भास्कर कुरुप
यूँ ही भटकते हुए
पानी के मोड़
कोवलम्
आखिरी चट्टान

गोआ से कन्या-कुमारी तक की यह यात्रा दिसम्बर सन् बावन और फ़रवरी सन् तिरपन के बीच की गयी थी। यात्रा से लौटते ही मैं ने यह पुस्तक लिख डाली थी। उन दिनों हर चीज की छाप मन पर ताजा थी। पूरे अनुभव को ले कर मन में एक उत्साह भी था। इस लिए कहीं-कहीं अतिरिक्त भावुकता से अपने को नहीं बचा सका था। इस बार नये संस्करण के लिए पुस्तक को दोहराते समय पहले सोचा था कि मुद्रण की भूलों को ठीक करने के अतिरिक्त और इस में कुछ नहीं करूँगा। परन्तु समय के अन्तराल ने जहाँ प्रभावों को कुछ धुंधला दिया है, वहाँ मन में उन के प्रति एक तटस्थता भी ला दी है। इस लिए कुछ जगह थोड़ा-बहुत परिवर्तन अनायास ही हो गया है। पुस्तक का कुछ अंश मैं ने फिर से लिखा है। शेष में भाषा को जहाँ-तहाँ से छू दिया है। फिर भी मूलतः किसी तरह का परिवर्तन इस में नहीं हुआ। वह न तो उचित ही था, न अपेक्षित ही।

पहले संस्करण में ही कुछ जगह व्यक्तियों के नाम मैं ने बदल दिये थे। जहाँ सम्भव था, वहाँ नाम नहीं बदले। भास्कर कुरुप उस व्यक्ति का वास्तविक नाम है। श्रीधरन् एक बदला हुआ नाम।

— मोहन राकेश

आर-५२२, न्यू राजेन्द्र नगर,
नयी दिल्ली-५

वाण्डर लस्ट

दिशाहीन दिशा

अब्दुल जब्बार पठान

नया आरम्भ

रंग-ओ-बू

पीछे की डोरियाँ

मनुष्य की एक जाति

लाइटर, बीड़ी और दार्शनिकता

चलता जीवन

वास्को से पंजिम तक

सौ साल का गुलाम

मूर्त्तियों का व्यापारी

आगे की पंक्तियाँ

बदलते रंगों में

हुसैनी

समुद्र-तट का होटल

पंजाबी भाई

मलबार

बिखरे केन्द्र

कॉफी, इनसान और कुत्ते

बस-यात्रा की साँझ

सुरक्षित कोना

भास्कर कुरूप

यूँ ही भटकते हुए

पानी के मोड़

कोवलम्

आख़िरी चट्टान

आख़िरी चट्टान तक

वाण्डर लस्ट

खुला समुद्र-तट । दूर-दूर तक फैली रेत । रेत में से उभरी बड़ी-बड़ी स्याह चट्टानें । पीछे की तरफ़ एक टूटी-फूटी सराय । ख़ामोश रात और एकटक उस विस्तार को ताकती एक लालटेन की मटियाली रोशनी.......।

सब-कुछ ख़ामोश है । लहरों की आवाज़ के सिवा कोई आवाज़ सुनाई नहीं देती । मैं सराय के अहाते में बैठा समुद्र के क्षितिज को देख रहा हूँ । लहरें जहाँ तक बढ़ आती हैं, वहाँ झाग से एक लकीर खिंच जाती है । मेरे सामने एक बुड्ढा बैठा है । उस के चेहरे पर भी न जाने कितनी-कितनी लकीरें हैं । उस की आँखों में भी कोई चीज़ बार-बार उमड़ आती है और लौट जाती है । हम दोनों के बीच में एक लम्बी पुरानी मेज़ है जो कुहनी का ज़रा-सा बोझ पड़ते ही चरमरा उठती है । बुड्ढे के सामने एक पुराना अख़बार फैला है । मेरे सामने चाय की प्याली रखी है । सहसा वातावरण में एक खिलखिलाहट फूट पड़ती है । एक सोलह-सत्रह साल की लड़की पास की कोठरी से आ कर

बुड्ढे के गले में बाँहें डाल देती है। बुड्ढा उस की तरफ़ ध्यान न दे कर उसी तरह अख़बार की पुरानी सुर्खियों में खोया रहता है। मैं चाय की प्याली उठाता हूँ और रख देता हूँ। लहरों का फेन आगे तक आ कर रेत पर एक और लकीर छोड़ जाता है……।

एक पहाड़ी मैदान। धान और मक्की के खेतों से कुछ हटकर लकड़ी और फूस की एक झोंपड़ी। वातावरण में ताज़ा कटी लकड़ी की गन्ध। ढलती धूप और झोंपड़ी की खिड़की से बाहर झाँकती साँझ……।

बेंत की टूटी कुरसी पर बैठ कर खिड़की से बाहर देखते हुए दूर तक वीरान पगडण्डियाँ नज़र आती हैं। उन पर कहीं कोई एकाध ही व्यक्ति चलता दिखाई देता है। खिड़की के बाहर साँझ उतर जाने पर झोंपड़ी में रात घिर आती है। मैं खिड़की से हट कर अपने आस-पास नज़र दौड़ाता हूँ। फ़र्श पर, मेज पर और चारपाई पर काग़ज़-ही-काग़ज़ बिखरे हैं जिन्हें देख कर मन उदास हो जाता है। अपना-आप बहुत अकेला और भारी महसूस होता है। लकड़ी की गन्ध से ऊब होने लगती है। साथ की झोंपड़ी से आती धुएँ की गन्ध अच्छी लगती है। मैं फिर खिड़की के पास जा खड़ा होता हूँ। पगडण्डियाँ अब बिलकुल सुनसान हैं और धीरे-धीरे अँधेरे में डूबती जा रही हैं। एक पक्षी पंख फड़फड़ाता खिड़की के पास से निकल जाता है……।

कच्चे रास्ते की ढलान। एक मोड़ पर अचानक क़दम रुक जाते हैं। नीचे, बहुत नीचे, दरिया की घाटी है। जहरमोहरा रंग का पानी सारस के पंखों की तरह एक द्वीप के दोनों ओर शाखाएँ फैलाये है। सारस की गरदन दूर चीड़ के वृक्षों में जाकर खो गयी है………।

ढलान से घाटी की तरफ़ झुके एक पेड़ के नीचे से दो आँखें सहसा मेरी तरफ़ देखती हैं। उन आँखों में सारस का विस्मय है और दरिया की उमंग। साथ एक चमक है जो कि उन की अपनी है।

"यह रास्ता कहाँ जाता है ?" मैं पूछता हूँ।

लड़की अपनी जगह से उठ खड़ी होती है। उस के शरीर में कहीं खम नहीं है। साँचे में ढले अंग—एक सीधी रेखा और कुछ गोलाइयाँ। आँखों में कोई झिझक या संकोच नहीं।

"तुम्हें कहाँ जाना है ?" वह पूछती है।

"वह रास्ता जहाँ भी ले जाता हो………।"

वह हँस पड़ती है। उस की हँसी में भी कोई गाँठ नहीं है। पेड़ इस तरह बाँहें हिलाता है, जैसे पूरे वातावरण को उन में समेट लेना चाहता हो। एक पत्ता झड़ कर चक्कर काटता नीचे उतर आता है।

"यह रास्ता हमारे गाँव को जाता है," लड़की कहती है। सूर्यास्त के कई-कई रंग उस के हँसिये में चमक जाते हैं।

"तुम्हारा गाँव कहाँ है ?"

"उधर नीचे।" वह जिधर इशारा करती है, उधर केवल पेड़ों का झुरमुट है—वही जिस में सारस ने अपनी गरदन छिपा रखी है।

"उधर तो कोई गाँव नहीं है।"

"है। वहाँ, उन पेड़ों के पीछे………।"

वह क्षण-भर खड़ी रहती है—देवदार के तने की तरह सीधी। फिर ढलान से उतरने लगती है। मैं भी उस के पीछे-पीछे उतरने लगता हूँ। साँझ होने के साथ दरिया का पहरमोहरा रंग धीरे-धीरे बैजनी होता जाता है। वृक्षों के साये लम्बे हो कर अदृश्य होते जाते हैं। फिर भी दूर तक कहीं कोई छत, कोई दीवार नज़र नहीं आती………।

कच्ची ईंटों का बना एक पुराना घर। घर में एक बुड्ढा और बुढ़िया रहते हैं। दोनों मिल कर मुझे अपने जीवन की बीती घटनाएँ सुनाते हैं। बीच-बीच में छत से एकाध तिनका नीचे गिर आता है। बुड्ढा बुढ़िया की बात काटता है कि उसे वह घटना ठीक से याद नहीं है। बुढ़िया बुड्ढे पर झुँझलाती है कि वह क्यों उसे बार-बार बीच में टोक देता है। जब उन में से एक की बात

धीमी होने लगती है, तो दूसरे की बारी आ जाती है। हवा झोंके से खिड़की खोल देती है। बाहर आग जल रही है। उस के पास बैठे कुछ व्यक्ति जोर-जोर से चिल्ला रहे हैं और झगड़ रहे हैं। क्षण-भर के लिए उन की आवाजें रुकती हैं, तो जंगल में दूर एक स्यार के रोने की आवाज सुनाई दे जाती है। तभी हवा खिड़की बन्द कर जाती है। मेरा मन जंगल से लौट कर फिर इस घर के अतीत में भटकने लगता है।....

जब कभी मैं यात्रा पर निकलने की बात सोचता हूँ, तो मेरे ओर ऐसे कई-कई चित्र अनायास मन में उभरने लगते हैं। सम्भव है कि ये बहुत पहले पढ़ी यात्रा-पुस्तकों के किन्हीं ऐसे अंशों की छाप हों जिन्हें मैं भूल चुका हूँ। पर सोचता हूँ कि अपने अन्दर से बार-बार ऐसे चित्रों को खोज लाना, मन की यह भटकन क्या है? एक बार किसी ने इसे नाम दिया था—वाण्डर लस्ट। यह मेरी अपनी सीमा है कि मुझे प्रयत्न कर भी इस के लिए हिन्दी का शब्द नहीं मिल रहा। यायावर वृत्ति? परन्तु वृत्ति लस्ट तो नहीं है। और वास्तव में यह भटकन क्या लस्ट ही है?

दिशाहीन दिशा

घर से चलते समय मन में यात्रा की कोई बनी हुई रूप-रेखा नहीं थी। बस एक अस्थिरता ही थी जो मुझे अन्दर से धकेल रही थी। समुद्र-तट के प्रति मन में एक ऐसा आकर्षण था कि मेरी यात्रा की कल्पना में समुद्र का विस्तार अनायास ही आ जाता था। बहुत बार सोचा था कि कभी समुद्र-तट के साथ-साथ एक लम्बी यात्रा करूँगा, परन्तु यात्रा के लिए समय और साधन साथ-साथ मेरे पास

कमी नहीं रहते थे। उन दिनों नौकरी छोड़ दी थी और पास में कुछ पैसे भी थे। इस लिए मैं ने तुरन्त चल देने का निश्चय कर लिया। पहले सोचा कि सीधे कन्याकुमारी चला जाऊँ और वहाँ से रेल, मोटर या नाव, जहाँ जो मिले, उस में पश्चिमी समुद्र-तट के साथ-साथ गोआ या बम्बई तक की यात्रा करूँ। रास्ते में जहाँ मन हुआ, वहीं कुछ दिन रह जाऊँगा। शिमला में हमारे स्कूल में कई लोग दक्षिण भारत के थे। उन में से एक ने कहा था कि रहने के लिए कनानोर (कण्णूर) बहुत अच्छी जगह है। एक और का कहना था कि मैं एक बार कोहलून पहुँच जाऊँ, तो वहाँ से और कहीं जाने को मेरा मन नहीं होगा। दिल्ली में एक मित्र ने कहा था कि पश्चिमी समुद्र-तट पर पंजिम (गोआ) से सुन्दर दूसरी जगह नहीं है। वहाँ खुला समुद्र-तट है, एक आदिम स्पर्श लिये प्राकृतिक रमणीयता है और सब से बड़ी बात यह है कि जीवन बहुत सस्ता है—रहने-खाने की हर सुविधा वहाँ बहुत थोड़े पैसों में प्राप्त हो सकती है। मेरे लिए सभी जगहें अपरिचित थीं, इस लिए मुझे सभी में आकर्षण लग रहा था। कोचिन, कण्णूर, मंगलूर, गोआ। अलेप्पी के बैक वाटर्स और नीलगिरि की पहाड़ियाँ। सब के प्रति मेरे मन में एक-सी आत्मीयता जागती थी। जैसे कि मेरा उन सब स्थानों से कभी का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा हो। सब से अधिक आत्मीयता कन्याकुमारी के तट को ले कर महसूस होती थी। परन्तु एक घने शहर की छोटी-सी तंग गली में पैदा हुए व्यक्ति के लिए उस विस्तार के प्रति ऐसी आत्मीयता का अनुभव करने का आधार क्या हो सकता था? केवल विपरीत का आकर्षण?

घर से चलते समय कुछ निश्चय नहीं था कि कब, कहाँ, कितने दिन रहूँगा। हाँ, चलने तक इतना निश्चय कर लिया था कि पहले सीधे कन्याकुमारी न जा कर बम्बई होता हुआ गोआ चला जाऊँगा और वहाँ से कन्याकुमारी की ओर यात्रा प्रारम्भ करूँगा। यह इस लिए चाहता था कि मेरी यात्रा का अन्तिम पड़ाव कन्याकुमारी हो""।

अब्दुल जब्बार पठान

दिसम्बर सन् बावन की पचीस तारीख। थर्ड क्लास के डिब्बे में ऊपर की सीट बिस्तर बिछाने को मिल जाये, यह बड़ी बात होती है। मुझे ऊपर की सीट मिल गयी थी। सोच रहा था कि अब बम्बई तक की यात्रा में कोई असुविधा नहीं होगी। रात को ठीक से सो सकूँगा। मगर रात आयी, तो मैं वहाँ सोने की जगह भोपाल ताल की एक नाव में लेटा बूढ़े मल्लाह अब्दुल जब्बार से ग़ज़लें सुन रहा था।

भोपाल स्टेशन पर मेरा मित्र अविनाश, जो वहाँ से निकलने वाले एक हिन्दी दैनिक का सम्पादन करता था, मुझ से मिलने के लिए आया था। मगर बात करने की जगह उस ने मेरा बिस्तर लपेट कर खिड़की से बाहर फेंक दिया, और खुद मेरा सूटकेस लिये हुए नीचे उतर गया। इस तरह मुझे एक रात के लिए वहाँ रह जाना पड़ा।

रात को ग्यारह के बाद हम लोग घूमने निकले। घूमते हुए भोपाल ताल के पास पहुँचे, तो मन हो आया कि नाव ले कर कुछ देर झील की सैर की जाये। नाव ठीक की गयी और कुछ ही देर में हम झील के उस भाग में पहुँच गये जहाँ से चारों ओर के किनारे दूर नज़र आते थे। वहाँ आ कर अविनाश के मन में न जाने क्या भावुकता जाग आयी कि उस ने एक नज़र पानी पर डाली, एक दूर के किनारों पर, और पूर्णता चाहने वाले कलाकार की तरह कहा कि कितना अच्छा होता अगर इस वक़्त हम में से कोई कुछ गा सकता।

"मैं गा तो नहीं सकता, हुज़ूर" बूढ़ा मल्लाह हाथ रोक कर बोला। "मगर आप चाहें, तो चन्द ग़ज़लें तरन्नुम के साथ अर्ज़ कर सकता हूँ—और माशाल्लाह चुस्त ग़ज़लें हैं।"

'ज़रूर ज़रूर!' हम ने उत्साह के साथ उस के प्रस्ताव का स्वागत किया। बूढ़े मल्लाह ने एक ग़ज़ल छेड़ दी। उस का गला काफ़ी अच्छा था और सुनाने का अन्दाज़ भी शायराना था। काफ़ी देर चप्पुओं को छोड़े वह झूम झूम कर ग़ज़लें सुनाता रहा। एक के बाद दूसरी, फिर तीसरी। मैं नाव में लेटा उस की तरफ़ देख रहा था। उस सरदी में भी वह सिर्फ़ एक तहमद लगाये था। गले में बनियान तक नहीं थी। उस की दाढ़ी के ही नहीं, छाती के भी बाल सफ़ेद हो चुके थे। मगर जब वह चप्पू चलाने लगता, तो उस की मांसपेशियाँ इस तरह हिलतीं जैसे उन में फ़ौलाद भरा हो।

तीसरी ग़ज़ल सुना कर वह ख़ामोश हो गया। उस के ख़ामोश हो जाने से सारा वातावरण ही बदल गया। रात, सरदी और नाव का हिलना, इन सब का अनुभव पहले नहीं हो रहा था, अब होने लगा। झील का विस्तार भी जैसे उतनी देर के लिए सिमट गया था, अब खुल गया।

"अब लौट चलें साहब," कुछ देर बाद उस ने कहा। "सरदी बढ़ रही है और मैं अपनी चादर साथ नहीं लाया।"

अविनाश ने झट से अपना कोट उतार कर उस की तरफ़ बढ़ा दिया। कहा, "लो, तुम यह पहन लो। अभी हम लौट कर नहीं चलेंगे। तुम्हें कोई ग़ालिब की चीज़ याद हो, तो वह सुनाओ।"

बूढ़े मल्लाह ने एतराज़ नहीं किया। चुपचाप अविनाश का कोट पहन लिया और ग़ालिब की एक ग़ज़ल सुनाने लगा। 'मुद्दत हुई है यार को मेहमाँ किये हुए.......'

हम लोग उसे 'बड़े मियाँ' कह कर बुला रहे थे। उस ने ग़ज़ल पूरी कर ली, तो मैं ने उस से उस का नाम पूछा।

"मेरा नाम है साहब, अब्दुल जब्बार पठान," उस ने कहा। 'पठान' शब्द पर उस ने ख़ास ज़ोर दिया।

"मियाँ अब्दुल जब्बार, तुम ने बहुत अच्छी चीज़ें याद कर रखी हैं," मैं ने कहा। "और इस से भी बड़ी बात यह है कि इस उम्र में भी तुम इतने रंगीन-मिज़ाज हो.......।"

"मर्दज़ाद हूँ साहब," वह बोला। "तबीयत की रंगीनी तो ख़ुदा ने मर्द-

आदमी को ही बख़्शी है। जिसे यह चीज़ हासिल नहीं, वह समझ लीजिए कि मर्दआदमी ही नहीं।"

"इस में क्या शक है!" अविनाश हँस कर बोला। अपनी उम्र में तो काफ़ी गुलछर्रे उड़ाये होंगे तुम ने।"

अब्दुल जब्बार मुसकराया। सफ़ेद मूँछों के नीचे उस के होंठों पर आयी मुसकराहट में रसिकता भर आयी। "उम्र तो हुज़ूर बन्दे की अजल के रोज़ तक रहती है," वह बोला। "मगर हाँ, जवानी की बहार जवानी के साथ थी। बहुत ऐश की, बेवक़ूफ़ियाँ भी बहुत कीं। मगर कोई अफ़सोस नहीं है। वो दिन फिर से मिलें, तो वही बेवक़ूफ़ियाँ नये सिरे से की जायेंगी, और फिर भी कोई अफ़सोस नहीं होगा।"

"मतलब वैसे अब उस तरह की बेवक़ूफ़ियों की नौबत नहीं आती?" अविनाश ने पूछ लिया।

"अब हुज़ूर? हिम्मत में किसी मर्दबाद से कम अब भी नहीं हूँ। कहिए जिस ख़बीस का ख़ून कर दूँ। मगर जहाँ तक नफ़्स का सवाल है, उस की मैं तोबा करता हूँ।.......अच्छा, कुछ देर ख़ामोश रह कर ज़रा एक चीज़ सुनिए.......।"

मैं ने समझा था कि वह कोई सूफ़ियाना क़लाम सुनाने जा रहा है। मगर वह बिना एक शब्द कहे चुपचाप नाव चलाता रहा। गहरी ख़ामोशी थी। चप्पुओं के पानी में पड़ने के सिवा कोई आवाज़ नहीं सुनाई दे रही थी। हम लोग उत्सुकता के साथ उस की तरफ़ देखते रहे। वह मुसकरा रहा था। मगर अब उस की मुसकराहट में पहले की-सी रसिकता नहीं, एक संजीदगी थी। "सुन रहे हैं?" उस ने कहा।

मेरी समझ में नहीं आया कि वह क्या सुनने को कह रहा है। "क्या चीज़?" मैं ने पूछ लिया।

"यह आवाज़," वह बोला। रात की ख़ामोशी में चप्पुओं के पानी में पड़ने की आवाज़। शायद आप के लिए इस में कोई ख़ास मतलब नहीं है। पहले मुझे भी इस में कुछ ख़ास नहीं लगता था। मगर तीन साल हुए एक रात मैं अकेला इस झील को पार कर रहा था। ऐसी ही रात थी, ऐसा ही अँधेरा था,

और ऐसा ही खामोश समाँ था। जब मैं झील के बीचोबीच पहुँचा, तो यह आवाज़ उस वक्त मुझे कुछ और-सी लगने लगी। हर बार जब यह आवाज़ होती, तो मेरे जिस्म में एक सनसनी-सी दौड़ जाती। मुझे लगता जैसे कोई चीज़ हलके-हलके मेरी रूह को थपथपा रही हो। फिर मुझे महसूस होने लगा कि वह चप्पुओं के पानी में पड़ने की आवाज़ नहीं, एक हलकी-हलकी रुहानी आहट है। मुझे उस वक्त लगा कि मैं खुदा के बहुत नज़दीक हूँ। मैं ने दिल-ही-दिल सज्दा किया और आइन्दा के लिए गुनाहों से तौबा की क़सम खायी। उस के बाद से जब कभी मैं रात के वक्त नाव ले कर झील में आता हूँ, तो मुझे यह आवाज़ फिर वैसी ही लगने लगती है। तब मैं अपनी उस तौबा को याद करता हूँ और अल्लाह का शुक्र मनाता हूँ कि उस ने मुझे इस तरह तौबा का मौका बख्शा। फिर मैं नये सिरे से तौबा का अहद करता हूँ और अल्लाह से उस की मेहर के लिए फ़रियाद करता हूँ।"

वह खामोश हो गया। सिर्फ पानी से चप्पुओं के टकराने का शब्द सुनाई देता रहा। मैं बायीं करवट हो कर हाथ की उँगली से पानी में उठती लहरों को छूने लगा। एक तीखी ठण्डी चुभन नसों को बींधती सारे शरीर में फैल गयी। तभी मुझे उस की कही खून करने की बात याद हो आयी। एक तरफ वह सब गुनाहों से तौबा का अहद किये था और दूसरी तरफ़ किसी भी इनसान का खून कर देने को तैयार था।

"मियाँ अब्दुल जब्बार," मैं ने सीधे उस की तरफ़ देखते हुए पूछा," इनसान का खून करने को तुम गुनाह नहीं समझते ?"

"हुजूर, मैं पठान हूँ," वह हाथ रोक कर बोला। "मेरी निगाह में गुनाह का ताल्लुक इनसान की रूह के साथ है, जान के साथ नहीं। मैं किसी की इज़्ज़त लूटता हूँ, किसी को ज़लील करता हूँ, किसी को चोरी करता हूँ, तो उस की रूह को सदमा पहुँचाता हूँ। यह गुनाह है। मगर मैं किसी खबीस की जान लेता हूँ, तो एक नापाक रूह को जिस्म की क़ैद से आज़ाद करता हूँ। यह गुनाह नहीं है।"

मैं मन-ही-मन मुसकराया और पानी की तरफ देखने लगा। चप्पुओं से बनती लहरों के साँप लपकते हुए एक-दूसरे में विलीन होते जा रहे थे। मेरी

एक डोंगी फिर पानी की सतह को छूने लगी ।

"तो कम से कम तलाक के सिलसिले में अब तुम बिलकुल पाक जिन्दगी बिता रहे हो ?" मैं ने पूछा ।

"क़सम खा कर तो नहीं कह सकता हुज़ूर," अब्दुल जब्बार संजीदगी छोड़ कर फिर अपनी रंगीनता में लौट आया । "यार लोगों की मजलिस में शरबत की दावत हो, तो इनकार भी नहीं किया जाता । वैसे रहमान आप की दुआ से अब भी इतना है कि...।" और जिन आँखों के इशारों में उस ने अपने पुरुषत्व की घोषणा की, उन्हें मैं जिन्दगी-भर नहीं भूल सकता ।

सरदी बढ़ रही थी । "तो हुज़ूर अब नाव को किनारे की तरफ़ ले चलूँ, काफ़ी वक़्त हो गया है," उस ने कुछ देर चुप रहने के बाद कहा । हम ने अब उस से और कोई चीज़ सुनाने का अनुरोध नहीं किया । नाव धीरे-धीरे किनारे की तरफ़ बढ़ने लगी ।

किनारे पर पहुँच कर जब हम चलने को हुए, तो अब्दुल जब्बार ने कहा, "आज शाम को कुछ मछलियाँ पकड़ी हैं । दो-एक सौग़ात के तौर पर लेते जाइए ।"

मगर अविनाश वहाँ होटल में खाना खाता था और मैं उसी का मेहमान था, इस लिए मछलियों का हमारे लिए कोई उपयोग नहीं था । हम ने उसे धन्यवाद दिया और वहाँ से चले आये ।

नया आरम्भ

मेरे साथ अकसर ऐसा होता है—कम से कम मुझे यह लगता तो है ही—कि बस या ट्रेन में मैं जिस खिड़की के पास बैठता हूँ, धूप उसी खिड़की से हो कर आती है । इस दिशा में पहले से सावधानी बरतने का कोई फल नहीं होता

क्योंकि सड़क या पटरी का रुख कुछ इस तरह से बदल जाता है कि धूप जहाँ पहले होती है, वहाँ से हट कर मेरे ऊपर आने लगती है। फिर भी मुझ से यह नहीं होता कि खिड़की के पास न बैठा करूँ। गति का अनुभव खिड़की के पास बैठ कर ही होता है। बीच में बैठ कर तो यूँ लगता है जैसे गतिहीन केवल हिचकोले खाये जा रहे हैं""।

भोपाल से मैं अमृतसर एक्सप्रेस में बैठ गया था। कोशिश कर के जगह भी बना ली थी। मगर धूप सीधी आ कर मेरे चेहरे पर पड़ रही थी। मेरे हाथों में एक पुस्तक थी जिसे मैं बहुत देर से खोले था मगर पढ़ नहीं पा रहा था। कभी दो-एक पंक्तियाँ पढ़ लेता और फिर धूप से बचने के लिए उस से ओट कर के खिड़की से बाहर देखने लगता। मेरे सामने की सीट पर बैठा एक लड़का यह देख कर मुस्करा रहा था कि मैं धूप से बचना भी चाहता हूँ और खिड़की के बाहर देखना भी चाहता हूँ। उस ने अपनी जगह से थोड़ा सरकते हुए मुझ से कहा, "इधर आ जाइए। इधर धूप नहीं है।"

मैं उठ कर उस के पास जा बैठा और खिड़की से बाहर देखने लगा। कुछ बाद किसी ने मुझे कन्धे से पकड़ कर हिलाया तो मैं चौंक गया। टिकिट इन्सपेक्टर टिकिट देखने के लिए खड़ा था। मैं ने टिकिट निकाल कर उसे दिखा दिया। टिकिट इन्सपेक्टर ने तब साथ बैठे उस लड़के की तरफ हाथ बढ़ाया। लड़के ने जेब से एक बड़ा-सा रूमाल निकाला। उस में एक टिकिट और कुछ आने पैसे थे। टिकिट इन्सपेक्टर ने उस का टिकिट ले कर ध्यान से देखा और पूछा, "कहाँ से बैठे हो?"

"बीना से," लड़के ने कहा।

"मगर तुम्हारा टिकिट तो बीना से भोपाल तक का है।" और उस ने बताया कि एक तो भोपाल पीछे रह गया है, दूसरे बीना से भोपाल तक भी उस गाड़ी में थर्ड क्लास में सफर नहीं किया जा सकता। "तुम्हें पता नहीं था कि यह लम्बे सफर की गाड़ी है?"

"जी, मैं लम्बे सफर के लिए ही इस में बैठा हूँ।" लड़के ने कहा। "मैं बम्बई जा रहा हूँ।"

लड़के की इस बात से आसपास बैठे सब लोग हँस दिये। इन्सपेक्टर भी

देख लिया। बोला, "फिर तुम ने टिकट बम्बई तक का क्यों नहीं लिया?"

लड़के की बड़ी-बड़ी आँखें कुछ सहम गयीं। "जो मेरे पास जितने पैसे थे, उन से यहीं टिकट आता था", उस ने कहा। इन्स्पेक्टर क्षण-भर अनिश्चित दृष्टि से उसे देखता रहा। फिर जैसे उसे भूल कर दूसरों के टिकट देखने लगा।

मैं भी पल-भर ध्यान से लड़के की तरफ़ देखता रहा। गोरा रंग और दुबला-पतला शरीर। गाल बहुत पतले, यहाँ कि चेहरे की नीली नाड़ियाँ बाहर दिखाई दे रही थीं। उम्र ग्यारह-बारह साल से ज़्यादा नहीं लगती थी, हालांकि वह एक वयस्क की तरह गम्भीर हो कर बैठा था। उस की हैंडलूम की हरी कमीज़ और भूरा पाजामा दोनों ही अब बदरंग हो रहे थे। चेहरे के दुबले-पन को देखते हुए उस की आँखें और कान बहुत बड़े लगते थे। आँखों के नीचे, जो वैसे सुन्दर थीं, स्याह गड्ढे पड़ रहे थे।

"तुम्हारा घर बम्बई में है?" मैं ने उस से पूछा।

"जी, मेरी मौसी वहाँ रहती है," उस ने कहा।

"पीना में तुम किस के पास थे?"

वहाँ मैं नौकरी करता था। अब नौकरी छोड़ कर मौसी के पास जा रहा हूँ?"

"तुम्हारे माता-पिता···?"

"वे दंगे के दिनों में मारे गये थे।"

मैं पल-भर चुप रहा। फिर मैं ने पूछा," बम्बई में मौसी से मिलने जा रहे हो?"

"जी नहीं। अब मैं वहाँ मौसी के पास ही रहूँगा। मौसी ने मुझे चिट्ठी लिख कर बुलाया है। मेरे मौसा गुज़र गये हैं और पीछे चार-पाँच साल के दो बच्चे हैं। घर में अब कमाने वाला कोई नहीं है। मैं तो यहाँ भी नौकरी करता था, वहाँ भी कर लूँगा। रोटी और पन्द्रह रुपये मिल जायेंगे। अपने लिए तो मुझे रोटी ही चाहिए। रुपये मौसी को दे दिया करूँगा। पास रहूँगा तो बच्चों की देखभाल भी हो जायेगी।"

मैं फिर कुछ देर उस के चेहरे की नीली धारियों को देखता रहा। "तुम्हें वहाँ जाते ही नौकरी मिल जायेगी?" मैं ने पूछा।

"जब तक नौकरी नहीं मिलेगी तब तक कोई और काम कर लूँगा।" उस ने कहा।

"तुम और क्या काम कर सकते हो?"

"बोझ उठा सकता हूँ।"

मेरे होंठों पर एक खुश्क-सी मुसकराहट आ गयी। वह अपनी दुबली-पतली बाँहों से हल्का-सा भी बोझ उठा सकता है, उस की कल्पना नहीं की जा सकती थी।

"तुम कितना बोझ उठा सकते हो?" मैं ने पूछा।

"जी, बड़ा तो नहीं, मगर छोटा-मोटा सामान तो उठा ही सकता हूँ। मैं उम्र में उतना छोटा नहीं हूँ जितना देखने में लगता हूँ।"

"क्या उम्र है तुम्हारी?"

"सोलह साल।"

"सोलह साल? तुम्हें ठीक पता है तुम्हारी उम्र सोलह साल है?"

लड़के ने गम्भीर भाव से सिर हिलाया। "जी, पार्टीशन से पहले मैं पत्तोकी में पाँचवीं जमात में पढ़ता था।"

और वह बताने लगा कि किस तरह वह पाकिस्तान से बच कर आया था। जब उन के घर पर हमला हुआ, तो उस के माता-पिता ने उसे आटे के ड्रम में छिपा दिया था। उस की खुशक़िस्मती थी कि हमलावरों ने ड्रम का ढँकना उठा कर नहीं देखा। वहाँ से बच कर वह किसी तरह एक क़ाफ़िले के साथ जा मिला और हिन्दुस्तान पहुँच गया। तीन साल वह शरणार्थी कैम्पों में रहा। फिर उसे यह नौकरी मिल गयी। वे लोग उसे अपने साथ शीना ले आये। पर उसे वे हर महीने ठीक से तनख्वाह नहीं देते थे। कभी कह देते कि उस की तनख्वाह कपड़ों में कट गयी है, और कभी कि जो चीज़ें उस ने तोड़ी हैं, उन की क़ीमत उस की तनख्वाह से कहीं ज़्यादा है। कभी कह देते कि उन्हों ने उस के नाम से लाटरी डाल दी है, जिस में हो सकता है उस का एक लाख रुपया निकल आये। नौकरी छोड़ने पर उन्हों ने उस का पूरा हिसाब कर के उसे कुल चार रुपये दिये थे।

"तुम इस से पहले अपनी मौसी के पास क्यों नहीं चले गये?" मैं

ने पूछा।

"पहले मुझे उन लोगों का पता नहीं मालूम था," वह बोला। "बीना में एक बार अपने वतन का एक आदमी मिल गया, तो उस ने बताया कि वे लोग बम्बई में चेम्बूर कैम्प में हैं। मैं ने उन्हें चिट्ठी लिखी कि वे कहें तो मैं उन के पास बम्बई आ जाऊँ। पर तब मौसा ने लिखा था कि मुझे लगी हुई नौकरी छोड़नी नहीं चाहिए। वे मौक़ा देखेंगे, तो अपने-आप मुझे बुला लेंगे।" फिर कुछ रुक कर उस ने पूछा, "जी, यह टी० टी० मुझे गाड़ी से उतार तो नहीं देगा?"

"नहीं, वह उतारेगा नहीं," मैं ने कहा। "अगर उतारना चाहेगा, तो हम उस से बात कर लेंगे।"

"तो मैं जरा लेट जाऊँ," वह बोला। "लगता है मुझे बुख़ार हो रहा है।"

मैं ने उस के शरीर को छू कर देखा। शरीर सचमुच गरम था। मैं अपनी पहली जगह पर चला गया, और वह वहाँ लेट गया।

गाड़ी होशंगाबाद स्टेशन पर रुकी, तो वह सो रहा था। बाहर देखते हुए मुझे साथ के डिब्बे में अपने एक प्रोफ़ेसर नजर आ गये। मैं उतर कर उन के पास चला गया। वे कहीं से एक शिक्षा-सम्मेलन का सभापतित्व कर आये थे और अब किसी मीटिंग के सिलसिले में बम्बई जा रहे थे। पहले वे मुझे उस सम्मेलन के विषय में बताते रहे। फिर मुझ से मेरे बारे में पूछने लगे। फिर अपनी हाल की युरॆप-यात्रा का क़िस्सा सुनाने लगे। नतीजा यह हुआ कि गाड़ी चल दी और मैं उन्हीं के डिब्बे में बैठा रह गया।

इटारसी स्टेशन पर लौट कर अपने डिब्बे में आया, तो वहाँ भीड़ पहले से बहुत बढ़ चुकी थी। भीड़ में रास्ता बना कर अपनी जगह पर पहुँचा, तो देखा कि वह लड़का सामने की सीट पर नहीं है। लोगों से पूछा, तो पता चला कि वह इटारसी तक आ ही नहीं पाया—टिकिट इन्स्पेक्टर ने उसे होशंगाबाद स्टेशन पर ही उतार दिया था।

बम्बई। विक्टोरिया टर्मिनस स्टेशन। स्टेशन पर उतर कर यह नहीं लगा कि दो साल बाद वहाँ आया हूँ। ऐसे लगा जैसे कि वहीं रहता हूँ, दादर से आया हूँ, रोज ही इस तरह आता हूँ और वहाँ की जिन्दगी से बुरी तरह ऊबा हुआ हूँ। स्टेशन पर ही बम्बई के जीवन की पूरी झलक दिखाई दे गयी—सूखे-मुरझाये चेहरे, बेहद जल्दबाज़ी और कोई खोयी हुई चीज ढूँढ़ने का सा हताश भाव। वहाँ आ कर पहला सवाल मन में यही आया कि वहाँ क्यों आया हूँ? एक चीज जिस से उलझन और बढ़ने लगी, वह थी मछली की गन्ध। विक्टोरिया टर्मिनस के सबर्बन भाग में इतनी मछलियाँ उतरी थीं (मतलब, टोकरियों में भरी वहाँ उतारी गयी थीं) कि मेन स्टेशन के चाय स्टाल पर चाय पीते हुए मुझे लगता रहा कि वह गन्ध मेरी चाय में से आ रही है। मैं चाय आधी भी नहीं पी सका।

बस में बैठा, तो वहाँ भी पास ही कहीं से वह गन्ध आ रही थी। कुछ आश्चर्य हुआ क्यों कि बसों में मछली की टोकरियाँ ले जाने की इजाज़त नहीं है। पर आश्चर्य की कोई बात नहीं थी। गन्ध मेरे साथ बैठी मत्स्यगन्धा नवयुवती के शरीर में से आ रही थी।

नहीं जानता कि बम्बई पहुँचते ही, सहसा मन वहाँ से चल देने को क्यों होने लगा। सोच कर आया था कि वहाँ आठ-दस दिन रुकूँगा, पुराने दोस्तों से मिलूँगा और फिर आगे की यात्रा पर चलूँगा। पर एक ही दोस्त से मिल लेने के बाद किसी दूसरे से मिलने जाने को मन नहीं हुआ। वह दोस्त, डी० पी०, नैशनल स्टैण्डर्ड में काम करता था। मैं उस के दफ़्तर में पहुँचा, तो मुझे देख कर उस के चेहरे पर वैसा ही भाव आया जैसा रोज दिखाई देने वाले किसी

घोड़े को देख कर आ सकता है। उस ने मज़ाक़िया तौर पर, मुझ से बैठने को कहा, बिना यह पूछे कि मैं कुछ लेना चाहूँगा या नहीं, नौकर से चाय लाने को कह दिया, और टेलीफोन पर मद्रास बाज़ार के भाव पूछता रहा।

वहाँ भी जाने कहाँ से मछली की गंध आ रही थी। समझ में नहीं आया कि एक अख़बार के दफ़्तर में मछलियाँ कहाँ से आ सकती हैं। जब डी० पी० ने टेलीफोन का रिसीवर रखा, तो मैं ने पहली बात उस से यही पूछी कि मछली की गंध कहाँ से आ रही है? उस ने मेरे सवाल को ज़रा महत्त्व नहीं दिया और उसी तरह मज़ाक़िया तौर पर कहा कि मछली की गंध आ रही है, तो समुद्र में से ही आ रही होगी क्योंकि समुद्र बहुत पास है।

डी० पी० से मिल कर मुझे लगा कि मैं ने बम्बई के सब लोगों से एक साथ मिल लिया है। उस के दफ़्तर से बाहर आया तो पूरी शाम मेरे पास खाली थी—पर मैं और किसी से मिलने नहीं गया। उस की बजाय एक्वेरियम में जा कर मछलियाँ देखता रहा। शीशे के केसों में सैकड़ों तरह की मछलियाँ इठलाती-इतराती तैर रही थीं। मुझे उन के नाम याद नहीं—केवल रंगों और लचक की ही कुछ याद है। एक नर्तकी के शरीर से कहीं ज़्यादा लचकती डेढ़-डेढ़ दो-दो फ़ुट की चितकबरी मछलियाँ, अपने मुँह से निकले रेशमी डोरों के सहारे करतब करती-सी नाटे क़द की चौड़ी मछलियाँ, गिरोह बाँध कर एक दिशा से दूसरी दिशा में जाती नाख़ून-नाख़ून जितनी मछलियाँ और राम-नाम के उच्चारण की तरह मुँह खोलती और बन्द करती भगत मछलियाँ। मैं एक्वेरियम बन्द होने तक मछलियों और केंकड़ों को देखता वहीं घूमता रहा। पहले फूलों और तितलियों को देख कर ही सोचा करता था कि इतने-इतने रंगों की सृष्टि करने वाली शक्ति के पास कितनी सूक्ष्म सौन्दर्य-दृष्टि होगी। पर नाख़ून-नाख़ून-भर की मछलियों के शरीर में रंगों की योजना देख कर तो जैसे उस विषय में सोचने की शक्ति ही जाती रही......।

एक्वेरियम के दरवाज़े बन्द हो जाने के बाद आधी रात तक मैरीन ड्राइव के पुश्ते पर बैठा समुद्र की उफनती लहरों को देखता रहा। मन हो रहा था कि मैं भी उस समय मछलियों के साथ-साथ उन लहरों में बह सकूँ, इधर से उधर धकेला जा सकूँ और अपने चारों ओर पानी की उस शक्ति को महसूस कर सकूँ

जिस का अनुमान चट्टानों पर होते हर आघात से हो रहा था। कितनी ही देर मैं वहाँ बैठा देखता रहा, और जब मैरीन ड्राइव बिलकुल सुनसान हो गया, तो चुपचाप उठ कर वहाँ से चला आया।

पीछे की डोरियाँ

पश्चिमी घाट की छोटी-छोटी पहाड़ियाँ तेज़ी से निकलती आ रही थीं। जगह-जगह पहाड़ियों को मिलाते पुल आ जाते जिन्हें देख कर मन में एक पुलक का अनुभव होता। पूना एक्सप्रेस की खिड़की एक चौखटे की तरह थी जिस के पीछे का चित्र निरन्तर गतिशील था। गहराई एक तरफ़ से ऊपर को उठने लगती और पहाड़ी का रूप ले लेती। पहाड़ी एक तरफ से बैठने लगती और घाटी में बदल जाती। मिट्टी पानी को स्थान दे कर हट जाती और पानी उभरी हुई चट्टानों के लिए स्थान छोड़ देता।

पहले सोचा था कि बम्बई से गोआ तक की यात्रा स्टीमर से करूँगा। पर स्टीमर बम्बई से पहली तारीख़ को जाने को था और मैं वहाँ और एक दिन भी नहीं रुकना चाहता था। इस लिए सुबह ही पूना एक्सप्रेस पकड़ ली थी और उस समय खिड़की के पास बैठा दूर तक घाट के प्रदेश को देख रहा था। वह हरियाली निःसन्देह बहुत सुन्दर थी—आँखें उस में बहुत रमती थीं। समतल पर हरियाली बहुत सपाट हो जाती है। ऊँचे पहाड़ों पर ऊँचाई उस पर छायी रहती है। पर यहाँ ज़मीन की हल्की-हल्की करवटों में हरियाली अपनी ही एक मस्ती में बिखरी थी.........।

मेरे पास बैठा एक सिन्धी एक गुजराती से पूछ रहा था कि पूना में देखने की ख़ास-ख़ास जगहें कौन-सी हैं।

"ख़ास जगह कोई नहीं है; सब वैसी ही हैं जैसी बम्बई में हैं," गुजराती

झुँझलाये स्वर में बोला ।

"वही देखो न," सिन्धी उसे समझाने लगा । "हर शहर में अपनी कोई रौनक भी अपनी होती है, कोई अच्छा मन्दिर होता है, कारखाना होता है। जैसे हमारे उधर कराची में……।"

"हाँ साहब, होता है", गुजराती इतने में ही उकता गया । "सड़क होती है, कारखाना होता है, सिनेमाघर होता है । यह सभी कुछ पूना में है ।"

"तो पूना में तो नहीं अपनी तरह का होता न," सिन्धी बोला । "हमारे उधर कराची में भी सड़कें थीं, कारखाना था, सिनेमाघर था, मगर वह सब इधर जैसा तो नहीं था न……!" फिर सब को सम्बोधित कर के कहने लगा, "क्यों जी, जब इन्सान और इन्सान एक-सा नहीं होता, एक भाई से दूसरा भाई मेल नहीं खाता, एक हाथ की पाँचों उँगलियाँ बराबर नहीं होतीं, तो फिर और चीज़ें एक-सी कैसे हो सकती हैं ? दुनिया में कोई दो चीज़ें कभी एक-सी नहीं होतीं ! हमारे उधर कराची में……।"

गुजराती उस के फ़लसफ़े से तंग आ गया था । वह उस की बात बीच में काटता बोला, "क्यों भाई साहब, कभी रेस खेलने जाते हो ?"

"क्यों नहीं जाता वड़ी ?" सिन्धी बोला । "बहुत बार जाता हूँ ।"

"देखो, रेस में जो घोड़ा बम्बई में दौड़ता है, वही पूना में दौड़ता है । जो आदमी बम्बई में पैसा गँवाता है, वही पूना में भी गँवाता है ।"

सिन्धी पल-भर सोचता रहा । फिर इस नतीजे पर पहुँच कर कि उसे उलझाने की कोशिश की जा रही है, बोला, "हम ने तो वड़ी पूना की रेस में कभी पैसा नहीं गँवाया । जो दो-तीन सौ गँवाया है, सब बम्बई में ही गँवाया है । या फिर हमारे उधर कराची में……।" और वह कराची की रेसों के लम्बे-चौड़े विवरण देने लगा । गुजराती ने हार कर सिर खिड़की से बाहर निकाल लिया । मैं भी उधर से ध्यान हटा कर फिर बाहर की हरियाली को देखने लगा ।

पूना। थर्ड क्लास का वेटिंग हाल। इतना रास्ता आने में ही मन बहुत थक गया था। आसपास कोई भी चेहरा परिचित नहीं। अपना आप समुद्र में तैरते तिनके की तरह। गाड़ी के आने में देर थी। काफ़ी देर इधर-उधर घूमता रहा। फिर निढाल-सा एक बेंच पर बैठ गया। बैठते ही जिन कुछ लोगों पर नज़र पड़ी, लगा कि वे उतने अपरिचित नहीं हैं। चेहरों के अलावा और सब-कुछ पहचाना हुआ था। रूखे हाथ-पैर, उलझे बाल, चीथड़े वस्त्र, खोयी-खोयी आँखें और रोयें-रोयें से झलकती शिथिलता। मैं ने उन्हें पहले भी बहुत बार देखा था—रेलवे स्टेशनों पर, फुट-पाथों पर और उजाड़ रास्तों पर पेड़ों के नीचे। उसी तरह बैठे और सामने देखते हुए। वे तीन व्यक्ति थे—एक पुरुष, दो स्त्रियाँ। स्त्रियों में एक युवा थी। पुरुष अपने डण्डे पर पाँव फैलाये बैठा था। बड़ी स्त्री उकड़ूँ बैठी कुछ चबा रही थी। युवा स्त्री खामोश आँखों से इधर-उधर देख रही थी। मराठा युवतियों की आँखों में जो एक उत्फुल्ल-सौम्य-मदिर भाव रहता है, वह उस की आँखों में भी था। पर निराशा और शिथिलता ने उस भाव को ढँक लिया था। वह एक बोरे से सिर टिकाये थी। शरीर में कसाव था, पर बैठने के ढीले-ढाले ढंग से लगता था कि शरीर पर दिमाग का नियन्त्रण धीरे-धीरे कम होता जा रहा है। जिस तरह मैं उस की आँखों में कुछ पढ़ने का प्रयत्न कर रहा था, उसी तरह वह भी मेरी आँखों में कुछ देख पाने का प्रयत्न कर रही थी। हम दोनों के बीच रेलवे का बोर्ड लगा था, जिस पर लिखा था—'मदद चाहिए ?' बोर्ड के नीचे सहायक की कुरसी रखी थी जिस पर कोई नहीं था।

झुंझलाये स्वर में बोला ।

"वहाँ देखो न," सिन्धी उसे समझाने लग· रौनक की जगह होती है, कोई बड़ा मन्दिर होगा हमारे उधर कराची में……।"

"हाँ साहब, होता है", गुजराती हामी भरते· है, डाकखाना होता है, सिनेमाघर होता है। यह

"तो पूना में तो यही अपनी नगर का होगा उधर कराची में भी मस्जिद थी, डाकखाना था, इधर जैसा तो नहीं था न……!" फिर वह कह लगा, "क्यों जी, जब इन्सान और इन्सान एक-स दूसरा भाई मेल नहीं खाता, एक हाथ की पाँचों उँ तो फिर और चीजें एक-सी कैसे हो सकती हैं ? एक-सी नहीं होतीं ! हमारे उधर कराची में……।'

गुजराती उस के फ़लसफ़े से तंग आ गया था । काटता बोला, "क्यों भाई साहब, कभी रेस खेलने जा

"क्यों नहीं जाता वहाँ ?" सिन्धी बोला । "बहु

"देखो, रेस में जो घोड़ा बम्बई में दौड़ता है, व आदमी बम्बई में पैसा गँवाता है, वही पूना में भी गँवा

सिन्धी पल-भर सोचता रहा । फिर इस नतीजे उलझाने की कोशिश की जा रही है, बोला, "हम ने कभी पैसा नहीं गँवाया । जो दो-तीन सौ गँवाया है, स है । या फिर हमारे उधर कराची में……।" और व लम्बे-चौड़े विवरण देने लगा । गुजराती ने हार कर निकाल लिया । मैं भी उधर से ध्यान हटा कर फिर वा देखने लगा ।

"वट से यू?" मिस्टर फर्नांडिस काफ़ी अच्छी अँगरेज़ी बोलते थे, पर 'वट डू यू से' की जगह हर बार 'वट से यू' ही कहते थे। उन्हों ने एक एक्स्ट्रा मार्का बीड़ी मुँह में लगायी और जेब से एक बढ़िया लाइटर निकाल कर उसे सुलगाते हुए बोले, "आप देख रहे हैं हिन्दुस्तान और गोआ में क्या फ़र्क़ है? हिन्दुस्तान में मैं अपने जेब-ख़र्च से सिर्फ़ यह बीड़ी ख़रीद सकता हूँ। गोआ में उतने ही पैसों में मुझे अच्छे सिगरेट मिल सकते हैं। यह लाइटर मैं ने गोआ में ख़रीदा था।"

"पर इतनी-सी बात के लिए आप यह तो नहीं चाहेंगे कि गोआ में पुर्तगाली शासन बना रहे?"

उन्हों ने अपना सफ़ेद सोला हैट सिर पर ठीक किया और थोड़ा सोच कर बोले, "नहीं, यह तो मैं कभी नहीं चाहूँगा। पर एक बात मैं आप को बता दूँ। एक आम गोआनी को भारत में सम्मिलित होने पर हासिल क्या होगा? मँहगी क़ीमतें और सस्ते नारे! फिर भी मैं अपना वोट भारत को ही दूँगा।"

वे मुझे गोआ की ज़िन्दगी के बारे में भी कितना कुछ बताते रहे। मुख्य बात यही थी कि गोआ में ज़रूरत की चीज़ें इतनी सस्ती हैं कि किसी गोआनी का गोआ से बाहर रहने को मन नहीं करता। इस पर मैं ने पूछ लिया कि वे ख़ुद गोआ छोड़ कर पूना में क्यों रहते हैं, तो मिस्टर फर्नांडिस का चेहरा कुछ मुरझा गया और वे काफ़ी घुमा-फिरा कर अपनी स्थिति स्पष्ट करने की चेष्टा करने लगे। मुझे लगा कि मैं ने यह मामूली-सा सवाल पूछ कर उन्हें अन्दर कहीं गहरे में कुरेद दिया है।

खिड़की अभी खुली नहीं थी। दोनों क्यू और लम्बे होते जा रहे थे। साथ के क्यू में खड़े कुछ युवतियाँ-युवक गीतों की पंक्तियाँ गुनगुना रहे थे और एक-दूसरे के कन्धे पकड़ कर उछल रहे थे। उन में से कुछ-एक एक-दूसरे की कमर में हाथ डाल कर वहीं रम्बा-साम्बा नाच रहे थे। उन्हें देखते हुए मिस्टर फर्नांडिस की आँखों में धुआँ-सा भरता जा रहा था। वे कुछ देर चुपचाप उन लोगों की हरकतों को देखते रहने के बाद बोले, "एक तो आज की दुनिया में समस्याएँ बहुत हैं, और समस्याओं से भी ज़्यादा नारे इस दुनिया में हैं। सब से बड़ी मुसीबत यह है कि हम हर रोज़ पहले से ज़्यादा अक़्लमन्द होते जा

लाइटर, बीड़ी और आत्मीयता

ज्यों-ज्यों शाम गहरी हो रही थी, बुकिंग हाल में भीड़ बढ़ती जा रही थी। भीड़ में ज्यादातर गोआ जाने वाले ईसाई यात्री थे। गोआ में उन दिनों सेंट फ्रान्सिस जेवियर्स के मृत शरीर का 'एक्सपोज़ीशन' चल रहा था और देश के विभिन्न भागों से बहुत बड़ी संख्या में यात्री वहीं जा रहे थे। टिकिटघर की खिड़की खुलने के घण्टा-भर पहले से ही लोग वहाँ जमा होने लगे थे। जिस समय मैं वहाँ पहुँचा, वहाँ दो क्यू साथ-साथ बन रहे थे। मैं ने एक क्यू में सब से पीछे खड़े गोआनी सज्जन से पूछा कि मार्मगाव का टिकिट लेने के लिए मुझे किस क्यू में खड़े होना चाहिए। उन्हों ने बहुत शिष्टता के साथ मुसकरा कर कहा कि मुझे उन के पीछे खड़े हो जाना चाहिए।

खिड़की खुलने में देर थी। ऐसे मौक़े पर जैसा कि स्वाभाविक होता है, गोआनी सज्जन पीछे की तरफ़ मुँह कर के मुझ से बात करने लगे। उन्हों ने मेरा नाम-पता और काम पूछा। मैं ने भी बदले में उन का नाम पूछ लिया।

"मेरा नाम है फ़र्नाण्डिस," उन्हों ने कहा "ए० एल० फ़र्नाण्डिस। एल्बर्ट ल्योनार्ड फ़र्नाण्डिस।" उन्हों ने बताया कि वे वहीं पूना की किसी फ़र्म में एकाउण्ट्स सुपरवाइज़र हैं।

जल्दी ही मिस्टर फ़र्नाण्डिस काफ़ी घनिष्ठता से बात करने लगे। कई बार आदमी अपने परिचितों के साथ उस सहजता से बात नहीं कर पाता जिस से अपरिचितों के साथ करने लगता है। मिस्टर फ़र्नाण्डिस आवेश के साथ गोआ के भारत में सम्मिलित होने के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते रहे। उन का कहना था कि गोआ भारत का ही एक भाग है और उसे अवश्य भारत में सम्मिलित हो जाना चाहिए। पर उन्हें डर भी था कि ऐसा होने की स्थिति में महाराष्ट्र के निहित स्वार्थ गोआ को आर्थिक रूप से तबाह न कर दें।

"वट से यू ?" मिस्टर फ़र्नांडिस खासी अच्छी अँगरेजी बोलते थे, पर 'वट डू यू से' की जगह हर बार 'वट से यू' ही कहते थे। उन्हों ने एक एक्का मार्का बीड़ी मुँह में लगायी और जेब से एक बढ़िया लाइटर निकाल कर उसे सुलगाते हुए बोले, "आप देख रहे हैं हिन्दुस्तान और गोआ में क्या फ़र्क है ? हिन्दुस्तान में मैं अपने जेब-खर्च से सिर्फ़ यह बीड़ी खरीद सकता हूँ। गोआ में उतने ही पैसों में मुझे अच्छे सिगरेट मिल सकते हैं। यह लाइटर मैं ने गोआ में खरीदा था।"

"पर इतनी-सी बात के लिए आप यह तो नहीं चाहेंगे कि गोआ में पुर्तगाली शासन बना रहे ?"

उन्हों ने अपना सफ़ेद सोला हैट सिर पर ठीक किया और थोड़ा खाँस कर बोले, "नहीं, यह तो मैं कभी नहीं चाहूँगा। पर एक बात मैं आप को बता दूँ। एक आम गोआनी को भारत में सम्मिलित होने पर हासिल क्या होगा ? महँगी कीमतें और सस्ते नारे ! फिर भी मैं अपना वोट भारत को ही दूँगा।"

वे मुझे गोआ की ज़िन्दगी के बारे में भी कितना कुछ बताते रहे। मुख्य बात यही थी कि गोआ में ज़रूरत की चीज़ें इतनी सस्ती हैं कि किसी गोआनी का गोआ से बाहर रहने को मन नहीं करता। इस पर मैं ने पूछ लिया कि वे खुद गोआ छोड़ कर पूना में क्यों रहते हैं, तो मिस्टर फ़र्नांण्डिस का चेहरा कुछ मुरझा गया और वे काफ़ी घुमा-फिरा कर अपनी स्थिति स्पष्ट करने की चेष्टा करने लगे। मुझे लगा कि मैं ने यह मामूली-सा सवाल पूछ कर उन्हें अन्दर कहीं गहरेमें कुरेद दिया है।

खिड़की अभी खुली नहीं थी। दोनों क्यू और लम्बे होते जा रहे थे। साथ के क्यू में खड़े कुछ युवतियाँ-युवक गीतों की पंक्तियाँ गुनगुना रहे थे और एक-दूसरे के कन्धे पकड़ कर उछल रहे थे। उन में से कुछ-एक एक-दूसरे की कमर में हाथ डाल कर वहीं राम्बा-साम्बा नाच रहे थे। उन्हें देखते हुए मिस्टर फ़र्नांण्डिस की आँखों में धुँआ-सा भरता जा रहा था। वे कुछ देर चुपचाप उन लोगों की हरकतों को देखते रहने के बाद बोले, "एक तो आज की दुनिया में समस्याएँ बहुत हैं, और समस्याओं से भी ज़्यादा नारे इस दुनिया में हैं। सब से बड़ी मुसीबत यह है कि हम हर रोज़ पहले से ज़्यादा अक़्लमन्द होते जा

रहे हैं। जो बच्चा आज पैदा होता है, वह कल पैदा हुए बच्चे से ज़्यादा अक्ल-मन्द होता है। आज की दुनिया को कोई चीज़ अगर ले डूबेगी, तो वह यही है।... सच है न ?"

मैं ने कहा कुछ नहीं, सिर्फ़ मुस्करा कर रह गया। "मेरा ख़याल है," वे एक बार इधर-उधर देख कर भेद की बात कहने की तरह मेरी तरफ़ झुक कर बोले, "यह बढ़ती अक्लमन्दी हम सबों को तो धीरे-धीरे [illegible] बनाये दे रही है, और इन लोगों को [illegible]...सच है न ?"

उसी समय हमारे सामने क्यू टूट गया। टिकिटघर की खिड़की खुल गयी थी और टिकिट-बाबू ने साथ के क्यू को भी नहीं मान कर टिकिट देना शुरू कर दिया था। उस धक्कमपेल में मैं क्यू के आखिरी सिरे पर जा पहुँचा। मिस्टर फ़्रांसिस का सफ़ेद सोला हैट उस के बाद दिखाई नहीं दिया।

चलता जीवन

अगले दिन लोण्डा स्टेशन पर गाड़ी बदल कर मैं ने टाइम-टेबल देखा। मार्मुगाव तक कुल छयालीस मील का सफ़र था जिस में गाड़ी को साढ़े आठ घण्टे समय लेना था। कासलरॉक स्टेशन पर गाड़ी लंच के समय पहुँचती थी और लगभग दो घण्टे ठहरती थी। फिर कालेम स्टेशन पर चाय के समय पहुँचती थी और वहाँ भी लगभग उतना ही समय ठहरती थी। मैं ने एक लम्बी साँस ले कर अपने को साढ़े आठ घण्टे के सफ़र के लिए तैयार कर लिया। गाड़ी चली, तो एक तटस्थ दर्शक की तरह आस-पास देखने लगा। दो नीले कोटों वाले व्यक्ति मेरे पास ही बैठे थे। एक का सिर पूरा घुटा हुआ था। वे जाने कोंकणी में बात कर रहे थे, या किसी और बोली में। मराठी वह नहीं थी। दक्षिण की भाषाओं की तरह उस में मूर्धन्य ध्वनियों की प्रधानता थी। पूछने पर पता

६१५५

चला कि ये लोग बम्बई के आस-पास कहीं रहते हैं और जो भाषा वे बोल रहे हैं वह 'उन की अपनी' भाषा है। ट्रिगर की तरह हिलते कण्ठ और स्टेनगन की तरह ध्वनित होते शब्द—वह भाषा उन के सिवा किसी और की हो भी नहीं सकती थी।

वे एग्ज़ीबीशन के सिलसिले में गोआ जा रहे थे। यह देख कर कि वे एक-एक कान में सोने की मोटी बाली पहने हैं, मैं ने उन से इस का कारण पूछा, तो उत्तर मिला कि यह उन का अपना रिवाज है।

"पर एक-एक कान में ही क्यों पहनते हो?" मैं ने पूछा।

"यही रिवाज है।"

मैं इस से आगे नहीं बढ़ सका।

गाड़ी के कासलरॉक पहुँचने तक मुझे भूख लग आयी। गाड़ी के प्लेटफ़ॉर्म पर रुकते ही मैं ने बाहर निकलने के लिए दरवाज़ा खोला, तो एक सन्तरी ने बाहर से मुझे रोक कर दरवाज़ा बन्द कर दिया। पता चला कि वहाँ गाड़ी दो घण्टे इस लिए रुकेगी कि भारतीय कस्टम्ज़ की तरफ़ से सामान की जाँच की जायेगी। यह भी कि कालेम स्टेशन पर फिर से जाँच होगी—पुर्तगाली कस्टम्ज़ की तरफ़ से।

मोटे कोटों वाले व्यक्ति अपने लंच के पैकेट साथ लाये थे। उन्हों ने कम से कम चार आदमियों का खाना—कोफ़्ते, सैण्डविच, अण्डे, टोस्ट और सॉसिज—निकाल कर बीच में रख लिये और बहुत हिसाब के साथ बाँट कर खाने लगे। पानी की उन के पास एक ही बोतल थी। उस में से वे 'एक घूँट तू, एक घूँट मैं', के आधार पर पानी पीते रहे। दोनों की आत्मा पर इस का बहुत बोझ था कि वह कहीं दूसरे से ज़्यादा हिस्सा न ले जाये। पूरा का पूरा खाना उन्हों ने दस मिनिट में समाप्त कर दिया।

वहाँ सामान की चैकिंग में ज़्यादा दिक़्क़त नहीं हुई। गाड़ी वहाँ से चली, तो दूध-सागर के झरनों की चर्चा होने लगी। गाड़ी झरनों के पास पहुँची, तो मोटे कोटों वाले व्यक्ति एक साथ खिड़की से बाहर झुक गये। प्राकृतिक सौन्दर्य के उपभोग में भी शायद वे बिलकुल बराबर का हिस्सा रखना चाहते थे। पहली बार गाड़ी झरनों के बहुत पास से हो कर निकली। काफ़ी ऊँचाई से

पानी की चमकीली परतें ... लिए रही थीं। पास से देखने पर उन में कुछ विशेषता नहीं लगी। पर ज्यों-ज्यों गाड़ी आगे निकलती आयी, त्यों-त्यों दूर के फ़ासले से देखने पर, उन का सौन्दर्य बढ़ता गया। जब हरी नज़र से ओझल हो गये, तो लगने लगा कि मानसून उन का अपना ही एक सौन्दर्य था।

कासल रॉक पहुँच कर पता चला कि वहां सामान की चेकिंग ही नहीं, डाक्टरी परीक्षा भी होगी। जैसी डाक्टरी परीक्षा मैं ने वहाँ देखी, वैसी पहले कभी नहीं देखी थी। एक आदमी होता है जिस से कुछ और मन की परीक्षा हो जाती है। एक और आदमी होता है जो शरीर के अन्दर छिपे रोग का पता दे देता है। कासल के डाक्टर का हाथ ऐसे किसी आदमी से कम नहीं था। वह हर आदमी की कलाई को अपनी दो उँगलियों से छू कर ही जान लेता था कि उसे कोई रोग है या नहीं।

जो लोग सामान की चेकिंग के लिए आये, उन्हें न तो ठीक से अंगरेज़ी बोलनी आती थी, न हिन्दी। वे सिर्फ़ कोंकणी और पोर्तुगीज़ जानते थे। जिस आदमी ने मेरे सामान की चेकिंग की, उसे अँगरेज़ी हिन्दी के दो-एक वाक्य ही आते थे। उन में एक था, 'नया है कि पुराना ?' इस का सही उत्तर था, 'पुराना।' मेरे ट्रंक में दो-तीन सौ खाली काग़ज़ थे। उस ने उन्हें देख कर भी वही सवाल पूछा, तो मैं उसे समझाने लगा कि वे कोरे काग़ज़ हैं जो मैं अपने इस्तेमाल के लिए साथ लाया हूँ। पर उस ने मेरी बात नहीं समझी और फिर वही सवाल पूछ लिया, 'नया है कि पुराना ?'

'पुराना', इस बार मैं ने एक शब्द में उसे उत्तर दे दिया। उस ने हस्ताक्षर कर दिये।

दूसरा वाक्य जो उसे आता था, वह था 'उस में क्या है ?' मेरे बिस्तरबन्द को देख कर उस ने पूछा, "उस में क्या है ?"

"बिस्तर", मैं ने कहा।

"उस में क्या है ?"

"गद्दा, तकिया और चादर।"

"उस में क्या है ?"

मैं ने घूर कर उसे देखा। उस ने उस पर भी हस्ताक्षर कर दिये।

काले से, जहाँ लोहे की खानें हैं, पन्द्रह-बीस लड़के-लड़कियाँ हमारे डिब्बे में आ गये। वे बाहर से ही चहकते हुए आये थे और अन्दर आ कर भी उसी तरह चीखते-चहकते रहे। क्रिसमस-सप्ताह चल रहा था और नया साल आने को था। उन्हें उस समय अपने पर किसी तरह का प्रतिबन्ध स्वीकार नहीं था। उन्हों ने खिड़कियाँ बन्द कर दीं और बीस-तीस गुब्बारे अन्दर छोड़ कर उन से खेलने लगे। उन में से बहुतों ने—लड़कियों के अलावा लड़कों ने भी—जिस्म पर काफ़ी सोना लाद रखा था। उन्हें देख कर लगता था जैसे वहाँ की लोहे की खानों से लोहा नहीं सोना निकलता हो।

डिब्बे के अन्दर रंग-बिरंगे गुब्बारे उड़ रहे थे और खिड़की के शीशे के उस तरफ़ से नारियलों के घने-घने झुरमुट निकलते जा रहे थे। जिधर मैं बैठा था, उधर नीचे घाटी थी। घाटी में उगे नारियलों के शिखर उस ऊँचाई तक उठे थे जिस पर गाड़ी चल रही थी। लगता था जैसे गाड़ी ज़मीन पर न चल कर उन शिखरों के ऊपर-ऊपर से गुज़र रही हो। जहाँ घाटी कम गहरी होती, वहाँ गाड़ी तनों के बराबर से गुज़रती। फिर सहसा ऊँची ज़मीन आ जाने से शिखर आकाश में उठ जाते और गाड़ी उन की जड़ों से भी नीचे चलती नज़र आती। मैं शीशे के साथ आँखें सटाये हरियाली के विस्तार को समुद्र की तरह उफनते देख रहा था। तभी घने नारियलों से घिरी एक उदास नहर नीचे से निकल गयी जिस में एक छोटी-सी नाव, उतनी ही उदास गति से चल कर धीरे-धीरे पुल की तरफ़ आ रही थी। दृश्यपट पर क्षण-भर के लिए वह दृश्य उभरा और विलीन हो गया। गाड़ी पुल से कितना ही आगे निकल आयी, पर नाव तब भी पुल से अभी उतनी ही दूर थी।

अन्दर गुब्बारों का खेल खूब ज़ोर पकड़ रहा था, जब सावर्दे स्टेशन आ गया। उन लड़के-लड़कियों को वहीं उतरना था। गाड़ी के स्टेशन पर रुकते ही दो-तीन युवा स्त्रियाँ डिब्बे के दरवाज़े के पास आ खड़ी हुईं। वे वहाँ की पोर्टर थीं। कुछ ही देर में युवतियों की दो पंक्तियाँ स्टेशन के बाहर जाती दिखाई दीं—एक रंग-बिरंगे गुब्बारे उड़ाती और दूसरी ट्रंकों और बिस्तरों से लदी, धूल उड़ाती।

मार्मुगाव गोआ का अन्तिम स्टेशन है। वहाँ से पंजिम जाने के लिए फ़ेरी लेनी पड़ती है। मैं ने सोचा था कि रात मार्मुगाव में रह कर सवेरे फ़ेरी से पंजिम चला जाऊँगा। पर मार्मुगाव से दो स्टेशन पहले गाड़ी में एक महाराष्ट्र युवक कारवाड़कर से परिचय हो गया। उस ने कहा कि मुझे रात को मार्मुगाव न जा कर वास्को में उतर जाना चाहिए। वास्को या वास्कोडिगामा मार्मुगाव से पहला स्टेशन है। कारवाड़कर वहीं पर रहता था। उस ने यह भी कहा कि मुझे कुछ दिन गोआ में रहना हो, तो उस के लिए भी सब से अच्छी जगह वास्को ही है, पंजिम नहीं।

उस ने अनुरोध किया कि मैं कम से कम एक रात वास्को में उस का मेहमान बन कर रहूँ। सुबह वह मुझे मार्मुगाव से पंजिम को फ़ेरी में बैठा देगा।

मैं उस के साथ वास्को में उतर गया। कारवाड़कर एक साधारण क्लर्क था। घर में उस के अलावा उस की माँ और पत्नी ये दो ही व्यक्ति थे। उस का व्याह हुए दो महीने हुए थे। उस के स्वभाव में एक विशेषता मैं ने देखी कि जहाँ एक अपरिचित व्यक्ति के लिए वह हर तरह का कष्ट उठाने को तैयार था, वहाँ अपनी पत्नी से एक मध्यकालीन पति की तरह सब तरह का काम लेना अपना अधिकार समझता था। आरम्भ से गोआ में रहने के कारण उसे सिर्फ़ कोंकणी ही आती थी—अँगरेज़ी के वह छोटे-छोटे वाक्य ही बना पाता था। मैं ने उस से कहा कि मैं अपने लिए नहाने का पानी कुएँ से निकाल लूँगा, तो वह बोला, "नो। अवर वाइफ़ डज़ इट।" मैं ने शेव कर के अपना सामान धोना चाहा, तो वह भी उस ने मेरे हाथ से ले लिया और कहा, "नो, अवर वाइफ़ डज़ इट।" घर की सीमाओं में किया जाने वाला कोई भी काम, चाहे वह मेहमान के सूटकेस को यहाँ से उठा कर वहाँ रखना ही क्यों न हो, उस की दृष्टि में उस की पत्नी

के कार्यक्षेत्र में आता था।

कारवाड़कर स्टेशन से मुझे सीधे अपने घर ले आया था, इस लिए मैं रात को वास्को शहर ठीक से नहीं देख पाया था। सुबह कारवाड़कर के साथ मार्मुगाव हार्बर की तरफ़ जाते हुए पहली बार उस शहर की एक झलक देखी। वास्को मार्मुगाव से दो मील इधर है। बन्दरगाह पर आने वाले बेड़ों और जहाज़ों के यात्री अगर अपने लिए कुछ ख़रीदना चाहें, तो उन्हें वास्को ही आना पड़ता है। मार्मुगाव अघनाशिनी नदी के मुहाने पर प्राकृतिक रूप से बना बन्दरगाह है। वास्को नदी और समुद्र के संगम के इस ओर पड़ता है। वहाँ के छोटे-से बीच से टकराती लहरें बहुत शालीन लगती हैं। बीच सड़क से आठ-दस फ़ुट नीचे है। सड़क के साथ-साथ बीच की ओर चौड़ी मुँडेर बनी है। रात के समय मुँडेर के पास खड़े हो कर देखने पर मार्मुगाव हार्बर में खड़े जहाज़ एक झील में बने छोटे-छोटे घरों-जैसे लगते हैं। वास्को बहुत छोटा-सा शहर है, पर बहुत खुला बसा हुआ है। वहाँ की जनसंख्या आठ-दस हज़ार से ज़्यादा नहीं है, पर उस का फैलाव बहुत है और निर्माण एक अच्छे आधुनिक शहर की तरह हुआ है। जीवन भी वहाँ अपेक्षाकृत शान्त है। पर वहाँ का साधारण से साधारण होटल भी उन दिनों बम्बई के अच्छे से अच्छे होटल से अधिक महँगा था। यह शायद एक्सपोज़ीशन की वजह से था।

हार्बर से कारवाड़कर लौट गया और मैं पंजिम जाने वाली फ़ेरी में बैठ गया।

पंजिम मुझे बहुत साधारण शहर लगा। कुछ आधुनिक इमारतें, तड़क-भड़कदार होटल और भीड़—वही कुछ जो एक औसत दरजे की राजधानी में हो सकता है। रात को मैं वहाँ गुजरात लॉज में ठहरा। एक ही बड़े-से कमरे में सात-आठ पलँग बिछे थे, जिन में एक मुझे दे दिया। पलँग में कुछ इस तरह के स्प्रिंग लगे थे कि जब भी मैं करवट बदलता, तो वह बुरी तरह चरमरा जाता, जिस से मेरी नींद टूट जाती। नींद टूटने पर हर बार मुझे एक ही व्यक्ति की भारी-सी आवाज़ सुनाई देती जो दो श्रोताओं को गुजरात लॉज में घटित हुए पुराने क़िस्से सुना रहा था। एक बार मेरी नींद टूटी तो वह कह रहा था, "वह जापानी अपने साथ छिपा कर दस-बारह शराब की बोतलें ले आया था"

[illegible] पता नहीं था कि शराब [illegible] करती है। तब मैं सोचा था कि शराबी [illegible] नहीं अपने [illegible] पर खेल लेता। पर अब यहाँ आ कर देखा कि शराब [illegible] के [illegible] हैं, [illegible] अपने आप पर ही पीने लगा। हम ने उस से कहा कि भले आदमी, [illegible] अकेला कैसे पी जायेगा? हम [illegible] हैं, तो [illegible] खेल दे। कुछ खुशहाल हो जायें। पर वह नहीं माना। [illegible] न कहीं आना-जाना था, न किसी से मिलना-जुलना था; बस बैठ कर अकेले शराब पीता रहता था....।"

यहीं पर मुझे झँप आ गयी। फिर आँख खुली, तो वह कोई और किस्सा सुना रहा था,"....कप्तान ने उसे जहाज पर ले जाने से इनकार कर दिया। अब हमारी समझ में न आये कि उस का क्या करें। गोवा की टिकट तो उस ने ली थी और मुसीबत हम लोगों की हो रही थी। आखिर उसे अस्पताल में ले गये। अस्पताल में वह उसी रात को मर गया।"

"उस के घर-बार का कुछ पता नहीं था?" एक सुनने वाले ने पूछा।

"डीरकर नाम था और बम्बई से आया था। अपना पूरा पता उस ने नहीं दिया था। वहाँ पर तो नेक और शरीफ़ बन कर रहना होगा न! वहाँ बाबा था कि दो चीज़ों के लिए गोआ की मशहूरी है। एक शराब और दूसरे रण्डी। अब एक क़िस्सा और सुनिए...।"

यहाँ पर मुझे फिर से झँप आ गयी।

सौ साल का गुलाम

सुबह पंजिम से मैं ओल्ड गोआ चला गया। ओल्ड गोआ में कई बड़े-बड़े गिरजा-घर हैं जिन में से एक में (उस का नाम चर्च ऑव बॉम जीजस है) सेण्ट फ़्रान्सिस के शरीर का प्रदर्शन किया जा रहा था। वह शरीर चार सौ साल से

वहाँ सुरक्षित है। गिरजाघर के बाहर दर्शनार्थियों की दो लम्बी पंक्तियाँ बनी थीं। जिन में से प्रत्येक में उस समय कम से कम एक-एक हज़ार व्यक्ति खड़े थे। चिलचिलाती धूप में चार-चार छह-छह घण्टे खड़े रहने के बाद ही एक व्यक्ति उस स्थान तक पहुँच सकता था जहाँ वह शरीर रखा था। मैं ने सुना कि सेण्ट फ्रांसिस के पैर का एक अँगूठा शीशे के केस में चादर से बाहर नज़र आता है। हर दर्शनार्थी उस स्थान को झुक कर चूमता है और आगे बढ़ जाता है। चार सौ साल पुराने शरीर को देखने की उत्सुकता मेरे मन में भी थी, पर पंक्ति में चार-छह घण्टे खड़े होने का धीरज नहीं था। इस लिए मैं कुछ देर वहीं आसपास ही घूमता रहा।

वहाँ का वातावरण उत्तर भारत के हिन्दू-मेलों-जैसा था। उसी तरह वहाँ मूर्तियाँ, मालाएँ और धार्मिक पुस्तकें बिक रही थीं। उन दिनों के लिए गिरजे के पास अस्थायी बाज़ार लग गया था जिस में प्रायः सभी स्टाल चटाइयों के बने थे। बाज़ार के एक तरफ़ बड़े-बड़े मटकों में चीटों से भरी ताड़ी बिक रही थी। मैं ने वहीं एक ढाबे में खाना खाया और घूमता हुआ दूर के गिरजाघरों की तरफ़ निकल गया। वे गिरजाघर एकदम सुनसान थे। कोई एक भी व्यक्ति उस तरफ़ आता दिखाई नहीं दे रहा था। एक गिरजाघर के बाहर बहुत-सी हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्तियाँ बिखरी थीं। शायद उन्हें बेघर कर के ही वह गिरजाघर वहाँ खड़ा किया गया था। मूर्तियाँ खानाबदोशों की तरह यहाँ-वहाँ पड़ी आसमान को ताक रही थीं। मैं ने दो-एक उलटी मूर्तियों को सीधा कर दिया और वहाँ से आगे निकल गया।

[illegible]

पेड़ों से घिरे हरियाली की छोटी-छोटी झीलों-जैसे लग रहे थे। धान लहलहाता, तो झीलों में लहरें उठ आतीं। मुझे प्यास लग आयी थी। खेतों के बीच से आते एक किसान को मैं ने आवाज़ दे कर रोक लिया। उस ने पहले कोंकणी में और फिर टूटी-फूटी अँगरेज़ी में पूछा कि मैं क्या चाहता हूँ।

"यहाँ कहीं पीने का पानी मिल सकता है?" मैं ने उस से पूछा।

है, रहन-सहन जितना अच्छा है, तुम ने जैसे अपनी मुर्गियाँ पाल रखी हैं और कुत्ता रख रखा है, क्या और किसान भी इसी तरह रहते हैं या कुछ थोड़े से ही किसान ऐसे हैं जो इस स्तर का जीवन बिता पाते हैं ? तुम्हारी पैदावार ज्यादा है, इस लिए तुम इतनी अच्छी तरह रहने का खर्च उठा सकते हो या यहाँ के सब किसान इतने ही खुशहाल हैं ?"

मेरी लम्बी-चौड़ी बात का उस ने बहुत संक्षिप्त-सा उत्तर दिया, "जी, यह कोठरी मेरी नहीं है।"

खाली गिलास वापस रख कर मैं उस के साथ कोठरी से बाहर निकल आया। एक नज़र आस-पास के खेतों पर डाल कर मैं ने पूछा, "यह खेत भी तुम्हारे नहीं हैं ?"

वह कोठरी का दरवाज़ा बन्द कर रहा था। ताला ठीक से लग गया, तो वह मूर्तियों वाले गिरजाघर की तरफ इशारा कर के बोला, "वह गिरजा देख रहे हैं न""ये खेत उसी गिरजे के बड़े पादरी के हैं। यह घर भी उन्हीं का है। मैं उन के खेतों में काम करता हूँ। मेरा अपना घर उस तरफ है।" और उस ने उधर इशारा किया जिधर से वह ताली लाने गया था।

"और मुर्गियाँ ?"

"ये भी उन्हीं की हैं। कुत्ता भी उन्हीं का है। उधर उन की एक छोटी-सी डेरी भी है।"

"पादरी रात को गिरजे से यहाँ आ जाते हैं ?"

"जी नहीं," वह बोला। यहाँ तो वे कभी-कभार आराम करने के लिए आते हैं। उन का बड़ा बँगला गिरजे के साथ है।" फिर कुछ रुक कर बोला, "पर पादरी आजकल यहाँ नहीं हैं।"

"कहीं बाहर गये हैं ?"

"जी हाँ, अपने देश गये हैं—पुर्तगाल।"

"तुम उन के पास कब से हो ?"

"हमारा खानदान सौ साल से उन के खानदान की सेवा में है," उस की आँखों में गर्व की चमक आ गयी। सौ साल से इन खेतों की जुताई-कटाई हमीं लोग करते आ रहे हैं।"

और वह मेरे चेहरे पर अपनी बात का असर देखता हुआ और भी दर्द के साथ मुस्करा दिया। कोई दूर से उसे आवाज़ दे रहा था। "आप जिस रास्ते से आये हैं, उसी रास्ते से चले जायें, दूसरा आप को कुछ नहीं कहेगा," कह कर वह [illegible] हुआ उस तरफ़ चला गया। उस के [illegible] चेहरे की छाप आँखों में लिए मैं फिर से [illegible] चलने लगा।

मूर्तियों का व्यापारी

हर आबाद शहर में कोई एकाध सड़क ज़रूर ऐसी होती है जो न जाने किस मनहूस वजह से अपने में अलग और सुनसान पड़ी रहती है। इधर-उधर की सड़कों पर खूब चहल-पहल होगी, पर बीच की वह सड़क, अभिशप्त उदास और वीरान ऐसे नजर आती है जैसे बाकी सड़कों ने कोई षड्यन्त्र कर के उस का बहिष्कार कर रखा हो। मड़गांव में एक ऐसी ही सड़क के बीच में रुक कर मैं कुछ देर चार-पांच अधनंगे बच्चों को सिगरेट की खाली डिबियों से अपना ही एक खेल खेलते देखता रहा।

मड़गांव से मुझे वास्को की गाड़ी पकड़नी थी। गाड़ी शाम को साढ़े पांच बजे आती थी और उस समय अभी तीन बजे थे। मैं ने तब तक तय कर लिया था कि अगले दिन मैं गोआ से चल दूंगा। एक स्थानीय प्रोफ़ेसर ने बतलाया था कि वहां पुलिस को यदि पता चला कि मैं एक भारतीय नागरिक हूं और वहां रह कर हिन्दी में कुछ लिखा करता हूं, तो यह असम्भव नहीं कि मुझे और मेरे काग़ज़ों को तब तक के लिए हिरासत में ले लिया जाये जब तक उन्हें विश्वास न हो जाये कि मैं गोआ की पुर्तगाली सरकार के विरुद्ध किसी षड्यन्त्र में सम्मिलित नहीं हूं। परन्तु मेरे चल देने के निश्चय का कारण यह नहीं था। कारण अपनी अस्थिरता ही थी—अस्थिरता और उदासी। मुझे न जाने क्यों

वह सारा प्रदेश बहुत ही बेगाना लग रहा था। अगले दिन स्टीमर 'साबरमती' बम्बई से मार्मुगाव पहुँच रहा था। मैं उस में मंगलूर जा सकता था। स्टीमर में यात्रा का मोह इतनी जल्दी कार्यक्रम बना लेने का एक और कारण था।

दोपहर को गाड़ी का समय पूछने मड़गाँव स्टेशन पर गया था। उस समय वहाँ एक व्यक्ति ने मेरे पास आ कर पूछा था कि क्या मैं सवा रुपये में सेण्ट फ्रांसिस की एक मूर्ति खरीदना चाहूँगा। उस के पास सौ डेढ़-सौ छोटी-छोटी प्लास्टिक की मूर्तियाँ थीं जो प्लास्टिक के ही पारदर्शी डण्डों में बन्द थीं। मेरे मना कर देने पर उस के चेहरे पर जो निराशा का भाव आया, उस से मेरा मन हुआ कि एक मूर्ति खरीद लूँ, पर यह सोच कर कि हजारों ईसाई यात्री वहाँ आये हुए हैं, उन में से कितने ही उस से मूर्तियाँ खरीद लेंगे, मैं उस तरफ से ध्यान हटा कर स्टेशन से बाहर चला आया।

काफी देर इधर-उधर घूम कर और सिगरेट की डिबियों का खेल देखने के बाद पहले से कहीं ज्यादा उदास हो कर शाम को वापस स्टेशन पर पहुँचा, तो सब से पहले नजर उसी व्यक्ति पर पड़ी। मुझे अपनी तरफ देखते पा कर वह फिर मेरे पास चला आया और पहले बारह आने में, फिर आठ आने में मुझ से एक मूर्ति खरीद लेने का अनुरोध करने लगा। मुझे इस से अपनी पहले की सहानुभूति के लिए भी खेद हुआ। लगा कि वह उन्हीं फेरी वालों में से एक है जो इसी तरह चीजों की क़ीमतें घटा-बढ़ा कर लोगों को ठगा करते हैं। मैं ने हल्की त्योरी के साथ सिर हिला कर फिर मना कर दिया। इस पर उस ने खुशामद के साथ कहा, "देखिए प्लीज, एक मूर्ति की कीमत सवा रुपये से कम नहीं है। मैं दूसरी कोई मूर्ति सवा रुपये से कम में नहीं बेचूँगा।"

मेरा मन उदास था और मुझे मूर्ति में कोई दिलचस्पी नहीं थी। मैं जा कर एक बेंच पर बैठ गया। वह वहाँ भी मेरे पीछे-पीछे चला आया।

"पर तुम क्यों यह मूर्ति मेरे मत्थे मढ़ने के पीछे पड़े हो?" मैं ने काफ़ी झुँझलाहट के साथ कहा। "तुम्हें और कोई नहीं मिल रहा खरीदने वाला?"

वह पल-भर खामोश रहा। फिर जैसे संकोच का परदा हटाता हुआ बोला, "देखिए प्लीज, बात यह है कि मैं सुबह से अब तक एक भी मूर्ति नहीं बेच पाया। मेरे पास एक भी पैसा नहीं है, और मैं सुबह से भूखा हूँ। आज नये

साल का दिन है। मैं ईसाई हूँ। चाहिए तो यह था कि आज मैं नये कपड़े पहन कर घर से निकलता और दिन-भर मौज मनाता, पर मेरा ट्रंक फ़ादर डिसूज़ा के कमरे में है और फ़ादर कमरे की चाबी अपने साथ ले गये हैं। मैं सुबह से न कपड़े बदल सका हूँ और न खाना खा पाया हूँ। सोचा था कि दो-एक मूर्तियाँ बिक जायेंगी, तो कम-से-कम खाने का सिलसिला तो हो ही जायेगा। मगर नये साल का दिन है, मुँह से कुछ कहा भी नहीं जाता। मेरे लिए यह दिन ऐसा मनहूस रहा है कि सुबह से अब तक एक प्याली चाय भी गले से नीचे नहीं उतार सका। रोज़ मैं पाँच-सात मूर्तियाँ बेच लेता हूँ, पर आज पूरे दिन में एक भी नहीं बिक पायी। इस वक़्त भूख के मारे मेरा क्या बुरा हाल है, मैं बता नहीं सकता।"

यह चौबीस-पच्चीस साल का युवक था। पर बात करते हुए उस की आँखें लड़कियों की तरह झुकी जा रही थीं। मैं तब भी तय नहीं कर पाया कि वह सच कह रहा है या यह भी उस की दुकानदारी का ही एक लटका है। "ये फ़ादर डिसूज़ा कौन हैं?" मैं ने उस से पूछा।

"हमारे पादरी हैं," वह बोला। "मैं उन्हीं के साथ बम्बई से यहाँ आया हूँ।"

"ये मूर्तियाँ भी तुम बम्बई से ही लाये हो?"

"नहीं, ये फ़ादर डिसूज़ा रोम से लाये थे।"

"और तुम उन्हीं की तरफ़ से इन्हें बेच रहे हो?"

"जी हाँ। फ़ादर डिसूज़ा मुझे इन पर पाँच प्रतिशत कमीशन देते हैं। हम ने इन थोड़े-से ही दिनों में बारह-तेरह सौ मूर्तियाँ बेच ली हैं। मगर आज का दिन जाने क्यों इतना ख़राब गया है। आज पहली जनवरी है। मैं डर रहा हूँ कि मेरा पूरा साल ही कहीं इस तरह न बीते।"

"पर फ़ादर डिसूज़ा कमरा बन्द कर के चले कहाँ गये?" मैं ने पूछा।

"आधी रात को उन का ··· के बड़े गिरजे में सर्मन था। रात के बारह बजे नया साल शुरू होने के समय वहाँ प्रार्थनाएँ होनी थीं—उन के बाद उन्हें सर्मन देना था। उन्हें इसी लिए विशेष रूप से यहाँ बुलाया गया था। एक साल पहले से ही इन लोगों ने उन से वचन ले रखा था।"

"फ़ादर डिमूज़ा रोम कब गये थे ?"

"चार महीने पहले। अभी महीना-भर पहले लौट कर आये हैं।" फिर पल-भर रुका रहने के बाद वह बोला, "जाते हुए वे तालो इस लिए साथ लेते गये होंगे कि तीन-चार हज़ार की मूर्तियाँ अब भी कमरे में रखी हैं। मुझे उस समय उन्हों ने यहाँ के एक और गिरजे में मूर्तियाँ बेचने के लिए भेज रखा था। मेरे लौट कर आने से पहले ही उन्हें चले जाना पड़ा। अब कल सुबह से पहले वे लौट कर नहीं आयेंगे।" फिर उसी आग्रह के साथ उस ने कहा, "आप एक मूर्ति ले लीजिए। प्लीज़ मैं आप को चार आने में दे रहा हूँ।"

"अभी तुम मेरे साथ चाय पी लो," मैं ने कहा। "मूर्ति मुझे नहीं चाहिए।"

हम चाय-स्टाल पर पहुँचे, तो पुर्तगाली सिपाहियों का एक दस्ता मार्च करता हुआ हमारे सामने से निकल गया। वह कुछ देर उन्हें देखता रहा। फिर त्योड़ें सख्त किये बोला, "किस तरह अकड़ कर चलते हैं ये। दिन-भर मैं इन्हें यहाँ इधर से उधर गश्त लगाते देखता हूँ। करते-धरते ये कुछ नहीं, बस अकड़ कर चलना जानते हैं। कोई इन की आँखों के सामने मर भी जाये, तो ये उसे उठायेंगे नहीं, सड़क पर पड़ा रहने देंगे। मैं ने यह अपनी आँखों से देखा है। यहाँ सड़तीव की ही एक सड़क पर एक मरा हुआ कुत्ता तीन दिन उसी तरह पड़ा रहा। इन का शायद ख़याल था कि कुत्ते के भाई-बन्द ही उसे उठा कर दफ़नाने के लिए ले जायेंगे।"

ज्यों-ज्यों चाय के घूँट और केक के टुकड़े गले से नीचे उतर रहे थे, उस के चेहरे पर सचमुच कुछ जान आती जा रही थी। अपनी प्याली ख़ाली कर के वह आँखें बन्द किये पल-भर न जाने क्या सोचता रहा। फिर बोला, "मैं जानता हूँ मुझे आज किस पाप की यह सज़ा मिली है। मैं आज नये साल के दिन सुबह गिरजे में प्रार्थना करने नहीं गया। उसी का यह फल है। मैं अपने मैले कपड़ों की वजह से झिझकता रहा। पर ईश्वर के घर मैले कपड़ों में जाने में आदमी को संकोच क्यों हो ? मुझे वहाँ कोई रोकता थोड़े ही ? इतना ही था न कि लोग देख कर समझते कि ..."और उस वाक्य को अधूरा छोड़ उस ने फिर कहा, "ख़ैर मुझे पता तो चल ही गया है, कि यह मुझे किस चीज़ की सज़ा

जिस समय मैं वास्को पहुँचा, रात हो चुकी थी। कारवाड़कर प्रतीक्षा कर रहा था। उस ने अगले रोज़ मडगाँव से सोलह मील दूर एक मन्दिर देखने चलने का कार्यक्रम बना रखा था। अब मैं ने उसे बताया कि मैं ने सुबह 'साबरमती' से मंगलूर चले जाने का निश्चय किया है, तो उसे बहुत निराशा हुई। उस ने पिकनिक का सामान तैयार कर लिया था और अपनी साली को भी, जो वहाँ पर लेडी डॉक्टर थी, साथ चलने का निमन्त्रण दे दिया था। पर मुझे उस ने यह सब नहीं बताया। सुबह नाश्ते के समय मुझे मालूम हुआ कि जो कुछ मैं खा रहा हूँ, वह सारा सामान उस दिन की पिकनिक के लिए तैयार किया गया था। मुझे अफ़सोस हुआ। पर तब तक कारवाड़कर ख़ुद ही जा कर मार्मुगाव से मेरे लिए 'साबरमती' का टिकट ले आया था।

रात को मैं कारवाड़कर के साथ फिर घूमने निकल गया था। चाँदनी रात में वास्को की मुख्य सड़क, जिस के बीचोबीच थोड़े-थोड़े फ़ासले पर छोटे-छोटे पेड़ लगे हैं, एक रूमानी नींद में सोयी लग रही थी। हमारे दायीं ओर नये साल के लिए सजायी गयी कोठियों में नृत्य-संगीत चल रहा था। बायीं ओर से समुद्र की लहरों की हल्की-हल्की आवाज़ सुनाई दे रही थी। मुझे लगा कि मैं ने जितने शहर अब तक देखे हैं, उन में वास्को सब से सुन्दर है—दो-चार

पंक्तियों की एक छोटी-सी भावपूर्ण कविता की तरह। मैंने कारवाड़कर से यह बात कही, तो वह थोड़ा मुसकराया और बोला, "इस सुन्दर कविता की कुछ पंक्तियाँ इस से आगे मिलेंगी। इसी सड़क पर थोड़ा-सा और आगे।"

मैं दिन-भर घूम कर काफ़ी थक चुका था और तब उस से लौटने को कहने को सोच रहा था। पर शहर के उस भाग को भी देख लेने के लोभ से चुपचाप उस के साथ चलता रहा।

सड़क का वह हिस्सा जहाँ बीच में पेड़ लगे थे, पीछे रह गया। आगे खुली सड़क थी। दायीं ओर कुछ बड़ी-बड़ी कोठियाँ थीं जो एक-दूसरे से काफ़ी हट कर बनी थीं। कुछ रास्ता और चल कर कारवाड़कर बायीं ओर को मुड़ गया और कच्चे रास्ते पर चलने लगा। उस ऊँचे-नीचे रास्ते पर चलते हुए अँधेरे में एक जगह मैं ठोकर खा गया।

"यह तुम मुझे कहाँ लिये चल रहे हो?" मैं ने ठोकर खाये पैर को दूसरे पैर से दबाते हुए कहा।

"जो जगह तुम्हें दिखाना चाहता हूँ वह इसी तरफ़ है", कारवाड़कर बोला। "अब हमें बस सौ-पचास गज ही और जाना है।"

रास्ता कभी दायें और कभी बायें को मुड़ता हुआ कुछ झोंपड़ियों के सामने जा निकला। प्रायः सभी झोंपड़ियाँ चटाई की बनी थीं। बीस साल पुरानी चटाई की दीवारों का जो मैला-फटा और गला-सड़ा रूप हो सकता है, वह उन झोंपड़ियों में नज़र आ रहा था। एक झोंपड़ी के आगे दो मोमबत्तियाँ जल रही थीं। उस ओर संकेत कर के कारवाड़कर ने कहा, "यह एक ईसाई का घर है जो इस तरह आज अपना नया साल मना रहा है।"

"यहाँ सही एक ईसाई का घर है?" मैं ने पूछा।

"नहीं," वह बोला। "यह मिली-जुली बस्ती है। ज़्यादातर घर यहाँ धोबियों के हैं जिन में आधे से ज़्यादा ईसाई हैं। पर यह आदमी शायद औरों से ज़्यादा मालदार है। देखना, ज़रा बच कर आना....," उस ने सहसा बाँह से पकड़ कर मुझे होशियार कर दिया। मैं ने झट से सँभल कर झोंपड़ियों के आगे से बहते गन्दे पानी के नाले को पार कर लिया।

एक झोंपड़ी के बाहर पहुँच कर कारवाड़कर ने किसी को आवाज़ दी। एक

आदमी हाथ में दिया लिये अन्दर से निकल आया। कारवाड़कर ने उनसे कोंकणी में कुछ बात की। फिर हम लोग वहाँ से वापस चल पड़े। चलते हुए कारवाड़कर ने बताया कि उस आदमी से उस ने पूछा था कि यह ईसाई हो कर भी आज तक शराब क्यों नहीं पीता रहा। उस आदमी ने उत्तर दिया कि उस ने आज दिन-भर में घर पर नया शराब बना लिया है। "यह है यहाँ की वास्तविक कविता। कैसी लगी तुम्हें?" उस ने कहा और मुझे चुप देखकर मुसकरा दिया।

वहाँ से निकल कर हम फिर पक्की सड़क पर आ गये। कविता की पहली पंक्तियाँ फिर सामने उभरने लगीं।

बदलते रंगों में

सुबह कारवाड़कर मुझे 'साबरमती' में चढ़ा गया। दो बजे के लगभग स्टीमर का लंगर उठा और स्टीमर खुले समुद्र की तरफ़ बढ़ने लगा। मैं उस समय एक तरफ़ तख्ते पर बैठा मुँडेर पर बाँहें टिकाये पानी में बनती लहरों की जालियों को देख रहा था। पानी की सतह पर एक कार्ड तैर रहा था जिस से एक केंकड़ा चिपका था। लहरें कार्ड को स्टीमर की तरफ़ धकेल रही थीं, मगर केंकड़ा निश्चिन्त भाव से बैठा शायद अपनी नाव के स्टीमर से टकराने की राह देख रहा था। जब कार्ड स्टीमर के बहुत पास आ गया, तो स्टीमर के नीचे से कटते पानी ने उसे फिर परे धकेल दिया। केंकड़े ने अपनी दो टाँगें जरा-सी उठा कर फिर से कार्ड पर जमा लीं और उसी निश्चिन्त मुद्रा में बैठा गति का आनन्द लेता रहा।

जब तक स्टीमर हार्बर में था, तब तक समुद्र का पानी एक हरी आभा लिये था। पर स्टीमर खुले समुद्र में पहुँचने लगा, तो पानी का रंग नीला नज़र आने लगा। पीछे हार्बर में जापानी जहाज 'चुओ मारो' की चिमनियाँ

नजर आ रही थीं। हमारे एक तरफ़ खुला अरब सागर था और दूसरी तरफ़ भारत का पश्चिमी तट। तट से थोड़ा इधर पानी में दो छोटे-छोटे द्वीप दिखाई दे रहे थे जो दूर से बहुत-कुछ जापानी घरों-जैसे ही लगते थे। इतनी दूर से देखते हुए पश्चिमी तट की रेखा एक बड़े से नक़्शे की रेखा लग रही थी। बीच के दोनों द्वीपों से सफ़ेद समुद्र-कपोत उड़ कर स्टीमर की तरफ़ आ रहे थे। उन में से कुछ तो रास्ते में ही पानी की सतह पर उतर जाते थे और नन्हीं-नन्हीं कागज़ की नावों की तरह वहीं तैरने लगते थे। दूसरी तरफ़ खुले पानी में सहसा एक तरह की हरियाली घुल गयी। मैं उस रंग को फैलते और धीरे-धीरे विलीन होते देखता रहा—जैसे कि समुद्र के मन में सहसा एक विचार उठा हो जो अब धीरे-धीरे उस के अवचेतन में डूबता जा रहा हो। मेरे साथ उसी तख़्ते पर बैठा एक नवयुवक भी उस हरियाली को घुलते देख रहा था। उस ने मेरी तरफ़ मुड़ कर कहा—"देखिए, ज़िन्दगी कितना बड़ा चमत्कार है!"

मैं कुछ न कह कर उस की तरफ़ देखने लगा।

"आप जानते हैं, यह हरियाली क्या है?" वह बोला। "ये प्लैंक्टोज़ हैं—तैरते हुए जीव। इन में पौधे और मांसयुक्त प्राणी, दोनों तरह के जीवाणु शामिल हैं।"

वह नवयुवक प्राणि-विज्ञान का विद्यार्थी था, और प्राणि-विज्ञान की दृष्टि से ही समुद्र को देख रहा था। विद्यार्थियों की एक पार्टी किसी शोध-प्रोजक्ट के सिलसिले में गोआ आयी थी। वह उस पार्टी का एक सदस्य था। पानी की तरफ़ संकेत करके वह फिर बोला, "आप वह रस्सी देख रहे हैं?"

मुझे पहले कोई रस्सी नज़र नहीं आयी। पर कुछ देर ध्यान से देखने पर पानी की सतह के नीचे एक लहराती हुई काली लकीर दिखाई दे गयी।

"वह रस्सी ही है न?" उस ने पूछा।

"हाँ, कोई पुरानी गली हुई रस्सी है", मैं ने कहा।

वह मुसकराया। "नहीं, वह रस्सी नहीं है। वह भी एक जीव-समूह है।"

"जीव-समूह?"

"हाँ, जीव-समूह," वह बोला। "इन्हें एसीडियन जर्म-परिवार कहते हैं। ये एक तरह की मछलियाँ हैं जो आपस में जुड़ी रहती हैं। ये रबड़ की तरह फैल

गहरे रंग है, और आदमी से तो अलग होती हैं। बाद में वे फिर उसी तरह जुड़ते और वहीं होने लगती हैं।"

मैं गौर से लहरों को देखने लगा। प्राणि-विज्ञान का विद्यार्थी बोला, "यह समुद्र एक बहुत बड़ा जादूगर है। इस में न जाने कितनी तरह के जादू छिपे हैं। रात को चाँद निकलने पर मैं आप को सोना-चाँदी और हीरे-मोतियों की मछलियाँ दिखाऊँगा।"

"सचमुच सोने-चाँदी की?"

वह हँसा और बोला, "असली सोने-चाँदी की नहीं,—केवल फ़ासफ़ोरस से चमकने वाली मछलियाँ।"

और पानी के जीवों के बारे में और भी कितना कुछ वह मुझे बतलाता रहा। पर मेरा ध्यान थोड़ी देर में उस की बातों से हट कर डेक की तरफ़ चला गया, क्योंकि वहाँ एक नवयुवक और एक नवयुवती के बीच हारमोनिका बजाने की प्रतियोगिता छिड़ गयी थी।

'साबरमती' का वह थर्ड क्लास का डेक किसी बड़े-से तबेले से कम नहीं था। सारे डेक पर एक सिरे से दूसरे सिरे तक बिस्तर-ही-बिस्तर बिछे थे जो सब एक-दूसरे से सटे हुए थे। कहीं दस व्यक्तियों के परिवार को केवल चार बिस्तर बिछाने की जगह मिली थी और वे उन चार बिस्तरों में ही पिचपिच हो कर सोने जा रहे थे। जहाँ मैं ने अपना बिस्तर बिछा रखा था, वहाँ असुविधा और ज़्यादा थी क्यों कि स्टीमर का माल उसी हिस्से से चढ़ाया और उतारा जाता था। मेरे बिस्तर के एक तरफ़ एक लम्बे-तगड़े पादरी साहब का बिस्तर था और दूसरी तरफ़ पाँच नमाज पढ़ने वाले एक मुसलमान सौदागर का। इस तरह मुझे दो धर्मों के बीच सैण्डविच हो कर रात बितानी थी। उस समय ज़्यादातर लोग अपने-अपने बिस्तरों पर ही बैठे थे। मेरी तरह कुछ थोड़े-से ही लोग थे जो एक तरफ़ तख़्ते पर बैठे दोनों दुनियाओं का मज़ा ले रहे थे।

हारमोनिका बजाने की प्रतियोगिता थोड़ी देर पहले शुरू हुई थी। नवयुवक एक तरफ़ के बिस्तरों का प्रतिनिधित्व कर रहा था, नवयुवती दूसरी तरफ़ के बिस्तरों का। पहले नवयुवती ने हारमोनिका पर एक फ़िल्मी धुन बजायी थी। उस के समाप्त होते-होते इधर से नवयुवक अपने हारमोनिका पर वही धुन बजाने

लगा। उस के धुन बजा चुकने पर इधर से उसे ओर से दाद दी गयी। इस पर नवयुवती दूसरी धुन बजाने लगी। इस बार उसे ऊपर से जो दाद मिली, वह और भी जोरदार थी। इस से यह प्रतियोगिता छिड़ गयी जो हारमोनिका की धुन और दाद देने की प्रतियोगिता अधिक थी। जहाज के दूसरे हिस्सों से भी लोग आ कर वहाँ जमा होने लगे थे। नवयुवक का पक्ष धीरे-धीरे बलवान् होता जा रहा था। अन्त में एक धुन बजाने पर उसे बहुत ही जोर-जोर से दाद दी गयी, तो उस ने खड़े हो कर नवयुवती की तरफ देखते हुए अपने हैट को छू कर सलाम किया। इस पर उस ओर भी जोर से दाद दी गयी। नवयुवती ने उस के बाद और धुन नहीं बजायी।

स्टीमर कुछ देर के लिए कारवाड़ रुक कर आगे बढ़ा, तो साँझ हो चुकी थी। पानी का रंग सुरमई हो गया था। दूर एक लाइट-हाउस की बत्ती दो बार जल्दी-जल्दी जलती फिर बुझ जाती। फिर दो बार जलती, फिर बुझ जाती। अँधेरा घिर रहा था। लाइट-हाउस से पीछे का आकाश धड़कता सा नज़र आने लगा था। आकाश के उस हिस्से के आगे लाइट-हाउस की बत्ती का जलना और बुझ जाना ऐसे लग रहा था जैसे कौंधती बिजली को एक मीनार में बन्द कर दिया गया हो और वह उस कैद से छूटने के लिए छटपटा रही हो—उसी तरह जैसे मलमल के आँचल में पकड़े जुगनू छटपटाते हैं। जिस द्वीप में लाइट-हाउस बना था, वह और उस के आस-पास के द्वीप स्याह पड़ कर ऐसे लग रहे थे जैसे बाढ़ में डूबे बड़े-बड़े दुर्ग, या पानी के अन्दर से उठे जलचरों के देह।

पूर्वी आकाश में रात हो गयी थी और तारे झिलमिलाने लगे थे, पर पश्चिम की ओर अरब सागर के क्षितिज में अभी साँझ शेष थी। परन्तु साँझ के वे बादल जो कुछ देर पहले सुर्ख और सोनई थे, और जिन के कारण सूर्यास्त सुन्दर लग रहा था, अब स्याही में घुलते जा रहे थे। समय साँझ के सौन्दर्य से आगे बढ़ आया था—रात के एक नये सौन्दर्य को जन्म देने के लिए।

स्टीमर बहुत डोल रहा था। डेक पर एक जगह से दूसरी जगह जाने के लिए कई-कई तरह नृत्य-मुद्राएँ बनाते हुए चलना पड़ता था। बहुत से लोग गोआ से अपने साथ छिपा कर शराब की बोतलें ले आये थे और उन्हें स्टीमर

पर दो भी आने की कोशिश में थे क्यों कि आगे [illegible] में फिर उन्हें टिकने की समस्या थी। दो आदमी जो पी-पीकर चुप हो चुके थे, एक-दूसरे से ज़ोर-शोर से अनुरोध कर रहे थे। दोनों के दिमाग़ में यह बात समायी थी कि मुझे तो शराब चढ़ गयी है, पर दूसरे को नहीं चढ़ी—इस लिए दूसरे को अभी और पीनी चाहिए। दोनों [illegible] देर कर एक-दूसरे को यह समझाने की चेष्टा कर रहे थे। एक तो अपने काम [illegible] महसूस हो रहे थे, दूसरे को अपनी आँखें मुंदी लग रही थीं। अन्त में दोनों ही अपने तर्क में सफल हुए क्यों कि दोनों ने और शराब डाल ली। पास ही कुछ स्त्री-पुरुषों ने पी कर ताल देते हुए एक कोंकणी गीत गाना शुरू कर दिया था। वैसे ही तरह-तरह के गीत स्टीमर के अलग-अलग हिस्सों में गाये जा रहे थे। मैं ने कोशिश की कि कुछ देर सो रहूँ, पर एक तो वे आवाज़ें और दूसरे स्टीमर के डोलने का एहसास—मुझे ज़रा नींद नहीं आयी। कुछ देर लेटे रहने के बाद उठ कर मैं फिर उसी तख्ते पर जा बैठा। समुद्र में ज्वार आ रहा था। बड़ी-बड़ी लहरें किसी के उसाँस भरते वक्ष की तरह उठ-गिर रही थीं। जहाज़ के डोलने के साथ समुद्र की सतह के बहुत पास पहुँच जाना, फिर ऊपर उठना, और फिर नीचे जाना, बहुत अच्छा लग रहा था। बटकल में सामान उतारने के लिए जहाज़ तट से पाँच-छह मील इधर रुका और कुछ पाल वाले बेड़े सामान लेने के लिए वहाँ आ गये। उन में से एक का सन्तुलन ठीक नहीं था। हर ऊँची उठती लहर के साथ ऊपर उठ कर जब वह नीचे आता, तो लगता कि बस अभी उलट जायेगा। सामान भरा जा चुका, तो वह उसी तरह एक तरफ़ को लचकता हुआ किनारे की तरफ़ बढ़ने लगा। मुझे हर क्षण लग रहा था कि वह अब उलटा कि अब उलटा। पर मल्लाहों को इस की चिन्ता नहीं थी। मैं तो उन के ख़तरे से ख़ासी उत्तेजना महसूस कर रहा था और वे थे कि आराम से चप्पू चलाये जा रहे थे। जब बेड़ा जहाज़ के पीछे से घूम कर दूसरी तरफ़ पहुँच गया, तो मैं भी उसे देखने के लिए उधर चला गया। पर हुआ कुछ भी नहीं—बेड़ा लहरों पर उठता-गिरता और उसी तरह एक तरफ़ को झुक कर पानी को चूमता हुआ किनारे की तरफ़ बढ़ता चला गया।

प्राणि-विज्ञान का विद्यार्थी शाम से ही सोने-चाँदी की मछलियाँ मुझे दिखाते

के लिए परेशान था। स्टीमर के अलग-अलग हिस्सों में जा कर और अलग-अलग कोण से झाँक कर वह कहीं पर उन की झलक पा लेने का प्रयत्न कर रहा था। पर अन्त तक उसे सफलता नहीं मिली थी। लेकिन स्टीमर बटकल से चला, तो मेरे सामने सहसा चमकीले जीवों से भरी एक नदी-सी चली आयी। चाँद स्टीमर के इस तरफ़ आ गया था और जहाँ उस की किरणें सीधी पड़ रही थीं, वहाँ असंख्य सुनहरी मछलियाँ काँपती दिखाई दे रही थीं। पर फ़ासफ़ोरस से चमकने वाली मछलियाँ वे नहीं थीं—लहरों पर चाँदनी के स्पर्श से बनती मछलियाँ थीं। आगे जहाँ स्टीमर की नोंक लहरों को काट रही थी, वहाँ फेन की एक नदी बन रही थी जो हलके आवर्तों में बदल कर पानी के मरुस्थल में विलीन होती जा रही थी।

रात के दो बज चुके थे। मैं उसी तरह तख्ते पर बैठा था। ज़्यादातर लोग सो चुके थे। कुछ लड़के सोने वालों के पास जा-जा कर ऊधम मचाते हुए नाविकों के गीत गा रहे थे।

मैं भी उठा और जा कर बिस्तर पर लेट गया। लड़कों के शोर के बावजूद वातावरण में एक निस्तब्धता प्रतीत हो रही थी। स्टीमर के इंजन का शोर भी जैसे शोर नहीं था। समुद्र का गर्जन भी उस निस्तब्धता का ही एक भाग था। सब-कुछ खामोश था। स्वयं रात भी जैसे सो रही थी पर मेरी आँखों में नींद नहीं थी। मैं खुली आँखों से सिर पर झूलते आकाश को देख रहा था और सोच रहा था कि ऐसे में अपलक ऊपर को देखते जाना भी क्या एक तरह की नींद नहीं है?

हुसैनी

हुसैनी एक ताश कम्पनी का एजेन्ट था जिस से मेरा परिचय स्टीमर पर हुआ।

स्टेशन की कैन्टीन में मैं शाम का खाना खाने गया था। कैन्टीन लगभग खाली थी। जिस मेज़ पर मैं खाना खा रहा था, उस पर तीन व्यक्ति और थे। उन में से दो व्यक्ति मेरे सामने बैठे थे, अतः उस सफ़ाई से चावलों के कौर बना-बना कर खाते देख रहा था कि उन के हस्त-कौशल पर आश्चर्य होता था। उन की उँगलियाँ पत्ते पर इस तरह चल रही थीं, जैसे उन का वास्तविक उद्देश्य पत्ते को साफ़ कर देना हो। वे दोनों व्यक्ति आमने-सामने बैठे खाना खाने के साथ आपस में बात कर रहे थे—अगर एक के बोलने और दूसरे के सुनने को बात करना कहा जा सकता है। बोलने वाला गोरे रंग और छरहरे शरीर का नव-युवक था जिस ने पतली-सी मूँछें शायद इस लिए पाल रखी थीं कि उस के चेहरे पर कुछ तो पुरुषत्व दिखाई दे। सुनने वाला छोटे क़द और साँवले रंग का व्यक्ति था जिस के चेहरे की हड्डियाँ बाहर को निकल रही थीं।

नवयुवक अपनी पतली उँगलियों से चावलों के गिने हुए दाने उठा कर मुँह में डालता हुआ सन्तति-निरोध पर भाषण दे रहा था। दूसरा व्यक्ति बीच में कुछ कहने के लिए उस की तरफ़ देखता, पर फिर चुप रह कर उसे अपनी बात जारी रखने देता। नवयुवक बातों-बातों में यह कह रहा था कि एक आम हिन्दुस्तानी को बच्चे पैदा करने का कोई अधिकार नहीं है—उस का जीवन स्तर इतना हीन है कि आबादी बढ़ाने की जगह उसे दूसरी तरह के उत्पादनों में अपनी शक्ति लगाना चाहिए।

वह बीच में पानी पीने के लिए रुका, तो दूसरा व्यक्ति अपनी छोटी-छोटी आँखें उठा कर ध्यान से उसे देखता हुआ अपने बढ़े हुए दाँतों को उघाड़ कर मुसकराया और बोला, "तुम बहुत समझदारी की बात कह रहे हो बरख़ुरदार! तुम्हारी सूझ-बूझ देखते हुए मुझे तुम से हसद हो रहा है।" कहते हुए उस की आँखों में खास तरह की चमक आ गयी। "तुम्हारा बाप बहुत खुशक़िस्मत आदमी है जो तुम्हारे-जैसा होनहार, अक़्लमन्द और खूबसूरत बेटा उसे मिला है। शुक्र है खुदा का कि वह तुम्हारे बताये असूल पर नहीं चला। अगर वह भी इस असूल पर चला होता, तो कहाँ यह सूरत होती, कहाँ यह दिमाग़ होता और कहाँ ये अक़्ल की बातें होतीं!" अपनी बात पूरी करके वह एक बार खुल-कर हँसा। मैं भी साथ हँस दिया। इस पर उस ने मेरी तरफ़ देख कर सिर

हिलाया और कहा, "क्यों साहब, क्या इरादा है ?"

यह हुसैनी से मेरे परिचय की शुरुआत थी।

कुछ देर बाद मैं डेक के तख़्ते पर बैठा समुद्र की तरफ़ देख रहा था, तो किसी ने पीछे से आ कर मेरे कन्धे पर हाथ रखा। मैं ने चौंक कर ऊपर देखा, तो हुसैनी मुसकराता हुआ बोला, "क्यों साहब, अँधेरे में भी आइडिया चलता है क्या ?"

मैं तख़्ते पर थोड़ा एक तरफ़ को सरक गया। वह पास बैठता हुआ बोला, "अभी थोड़ी देर में चाँद निकलेगा, तब तो आइडिया अपने-आप चलेगा। मगर यार, अँधेरे में भी आइडिया चलाते जाना काफ़ी मुश्किल का काम है।" मैं एक लेखक हूँ, यह मैं पहले उसे बता चुका था।

"उसे कहाँ छोड़ आये ?" मैं ने पूछा।

"वह तो यहीं गुम हो गया था। उस के बाद नहीं मिला।"

और वह मुझ से बहुत घनिष्ठ ढंग से बात करने लगा। वह उन व्यक्तियों में से था जिन को दूसरों के साथ व्यवहार में किसी तरह का संकोच नहीं होता और जो दूसरे के मन में भी अपने प्रति किसी तरह का संकोच नहीं रहने देते। वह बेतकल्लुफ़ी से अपना हाथ मेरे कन्धे पर चलाता हुआ मुझे बताने लगा कि जहाज़ के भिन्न-भिन्न हिस्सों में स्त्रियों और पुरुषों के बीच क्या-क्या तमाशा चल रहा है। अचानक अपनी बात रोक कर उस ने मेरे कन्धे को ज़ोर से झिंझोड़ दिया और ऊपर टूरिस्ट क्लास के रेलिंग की तरफ़ इशारा किया। वहाँ से कुछ युवक-युवतियाँ नीचे डेक की तरफ़ झाँक रहे थे और साथ-साथ लगे बिस्तरों पर रिमार्क कसते हुए हँस रहे थे। एक युवक अपना कैमरा आँख से लगा कर तसवीर का फ़्रेम सेट कर रहा था।

"देखो ये साले कैसे एक्का-बादशाह-गुलाम की बाज़ी खेल रहे हैं।" हुसैनी कुछ पल उन की तरफ़ देखते रहने के बाद दाँत उघाड़ कर बोला।

"एक्का-बादशाह-गुलाम की बाज़ी ?" बात मेरी समझ में नहीं आयी। उस की भाषा के ज़्यादातर मुहावरे ताश से सम्बन्ध रखते थे जो उस की अपनी ही ईजाद थे।

"फ़्लैश खेलते हो ?" उस ने पूछा।

मैं ने सिर हिला कर हामी भर दी।

"और तुम समझ नहीं पाये कि इक्का-बादशाह-गुलाम को ताशों का क्या मतलब है? लोग बड़ी-बड़ी कल्पनाएँ, पर कुल मिला कर कुछ भी नहीं। बात करते हुए उस की आँखों में फिर वही चमक आ गयी। "इन ताशों की ज़िन्दगी भी एक ऐसी ही है। इनमें जान-वान कुछ है नहीं, हम दुक्के-चौके-नहले वालों को ज़बरदस्ती इक्का-बादशाह-गुलाम बना कर खेल खेल रहे हैं। आख़िर हालत इन की भी वही होगी जो दुक्के-चौके-नहले वालों की। सिर्फ़ ये लोग ज़रा पिट कर अपनी जगह पर आयेंगे!" और मेरे कन्धे को फिर से हाथ का निशाना बनाते हुए उस ने कहा, "है नहीं ट्रम्प?"

"ट्रम्प तो ज़ोरदार है," मैं ने कहा, "पर हर ट्रम्प इस तरह मेरे कन्धे पर मत लगाओ।"

"बातें तुम भी मज़ेदार करते हो," उस ने हँस कर कहा और एक हाथ मेरे कन्धे पर और लगा दिया।

मंगलूर में हम एक ही होटल में ठहरे। वह एक छोटा-सा ब्राह्मण-होटल था। हुसैनी अकसर वहीं ठहरता था। उस होटल में मैं ने एक यज्ञोपवीत-धारी महाराज को हुसैनी का जूठा गिलास उठाते देखा, तो मुझे थोड़ा आश्चर्य हुआ। मेरा ख़याल था कि दक्षिण के ब्राह्मण बहुत कट्टर होते हैं और छुआछूत का बहुत ध्यान रखते हैं। पहले मैं ने सोचा कि शायद महाराज को पता हो न हो कि हुसैनी मुसलमान है। पर थोड़ी देर में महाराज उस का नाम पुकारता हुआ आया, तो मुझे अपना ख़याल बदल लेना पड़ा।

उस एक-डेढ़ दिन में ही मैं हुसैनी के बारे में काफ़ी कुछ जान गया था। वह कलकत्ता के नक़ली मोतियों के व्यापारी का लड़का था। शुरू में कई साल वह अपने पिता के साथ काम करता रहा था। पर एक बार जब पिता ने उस से लड़ कर यह ताना दिया कि वह उन्हीं के आसरे रोटी खा कर जी रहा है, तो वह उसी समय दुकान से उतर आया और लौट कर वहाँ नहीं गया। तब वह अकेला नहीं था—उस की पत्नी और दो बच्चे भी थे। उसे उन से बहुत प्यार था और वह उन के लिए ज़्यादा से ज़्यादा सुविधाएँ जुटाना चाहता था। पर वह ज़्यादा शिक्षित नहीं था और न ही उस के पास अपना व्यापार करने के लिए पैसा था। कुछ दिन तो वह कलकत्ते में ही एक जगह नौकरी करता रहा

वहाँ से महीने के उसे कुल साठ रुपये मिलते थे। उतने से रोटी का ख़र्च भी ठीक से नहीं चल पाता था। उसे यह देख कर दुःख होता था कि बच्चे दिन-ब-दिन पीले पड़ते जा रहे हैं और पत्नी का शरीर बाईस साल की उम्र में ही अपनी चमक खो रहा है। इस लिए जब ताज कम्पनी की यह नौकरी मिलने की हुई तो उस ने बग़ैर हीलोहुज्जत के इसे स्वीकार कर लिया। इस में वह कुल मिला कर महीने में दो-सवा-दो-सौ रुपये कमा लेता था। पर साल में ग्यारह महीने उसे सफ़र में रहना पड़ता था। कभी-कभी तो वह लगातार आठ-आठ महीने घर से बाहर रहता था। इसी वजह से यह काम उसे पसन्द नहीं था। वह हमेशा इस दुविधा में रहता था कि घर वालों के पास रह कर अभाव की ज़िन्दगी बिताना ज़्यादा अच्छा है, या उन से दूर रह कर थोड़ी-बहुत सुविधाएँ जुटा पाना। उस की पत्नी चाहती थी कि वह घर पर ही रहे—उन्हें चाहे कैसा भी जीवन व्यतीत करना पड़े। वह भी बहुत बार यही सोचता था, और दौरे के दिनों में इस का निश्चय भी कर लेता था। पर घर पहुँच कर देखता कि बच्चों का स्वास्थ्य पहले से अच्छा हो रहा है और पत्नी के शरीर में भी निखार आ रहा है, तो उस का मन फिर डाँवाडोल हो जाता। वह सोचता कि क्या यह उचित होगा कि वह अपनी तकलीफ़ से बचने के लिए बच्चों के स्वास्थ्य और पत्नी के सौन्दर्य को मिट्टी में मिल जाने दे? तब वह हर तरह के तर्क दे कर और भविष्य की कई-कई योजनाएँ बना कर, फिर घर से निकल पड़ता। इस बार उसे कलकत्ते से चले लगभग चार महीने हो चुके थे। वापस लौटने से पहले अभी साढ़े तीन-चार महीने और उसे दक्षिण भारत में घूमना था।

"ऐसी ज़िन्दगी जीने के लिए सचमुच बहुत धीरज चाहिए," मैं ने उस की बात सुन कर कहा।

"पहले तो कई बार मन बहुत परेशान हो जाता," वह बोला। "पर अब मैं ने अपने को ख़ुश रखने का एक तरीक़ा सीख लिया है, और वह है ख़ुश रहना। जब कभी मन उदास होने लगता है, तो मैं जिस-किसी के पास जा कर मज़ाक़ की दो बातें कर लेता हूँ। वह मुझे हँसोड़ समझता है और मेरी तबीयत बहल जाती है। फिर भी कभी-कभी बहुत मुश्किल हो जाता है।"

हुसैनी की ख़ुशदिली में सन्देह नहीं था। उसे अपने आसपास हमेशा कुछ-

मंगलूर ऐसा दिखाई दे जाता था जिस पर हम कोई [illegible] उठे। शाम को मंगलूर में एक बड़ा होटल खुल रहा था जिस का उद्घाटन करने मैसूर के राजप्रमुख आ रहे थे। जब राजप्रमुख की कार आयी, तो बाजार में कई स्त्रियों की भीड़ कार के आस-पास जमा हो गयी। हुसैनी मुझ से बोला, "पता है ये लोग भाग-भाग कर क्या देख रहे हैं? देख रही हैं कि राजप्रमुख की कार भी पहियों पर ही चलती है या हवा में उड़ती है। जब देखती हैं कि उस के नीचे भी पहिये लगे हैं, तो बहुत हैरान होती हैं।"

"हैरान होने के लिए इनसान को कहीं जाने की जरूरत नहीं," उस ने चलते हुए कहा। "आज की दुनिया में इनसान को कहीं भी हैरान होने का सामान मिल सकता है। अगर मंगलूर का एक जौहरी अपनी दुकान में सोने-चाँदी के साथ मोम-[illegible]याँ भी बेचता है, तो सिर्फ इसी लिए कि मेरे-जैसा आदमी राह चलते रुक कर एक बार और से [illegible] सके।"

मंगलूर में अधिकांश घर हरियाली के बीचों-बीच इस तरह बने हैं कि उसे एक उद्यान-नगर कहा जा सकता है। सुरुचि और सादगी, ये दोनों विशेषताएँ वहाँ के घरों में हैं। इस से साधारण से घर भी साधारण नहीं लगते। घूमते हुए हम लोग एक छोटी-सी पहाड़ी पर चले गये। यहाँ से शहर का रूप कुछ ऐसा लगता था जैसे घने नारियलों की एकतारम्यता को तोड़ने के लिए ही कहीं-कहीं सड़कें और घर बना दिये गये हों। दूर समुद्र की तट-रेखा दिखाई दे रही थी। मैं पहाड़ी के एक कोने में खड़ा देर तक शहर के सौन्दर्य को देखता रहा। शुरू से उत्तर भारत के घुटे हुए तंग शहरों में रहने के कारण वह सब मुझे बहुत आकर्षक लग रहा था। जब मैं चलने के खयाल से वहाँ से हटा, तो देखा कि हुसैनी पहाड़ी के दूसरे सिरे पर जा कर एक पत्थर पर बैठा उदास नजर से आसमान को ताक रहा है। उस का भाव कुछ ऐसा था कि मैं ने सहसा उसे बुलाना ठीक नहीं समझा। क्षण-भर बाद हुसैनी ने मेरी तरफ़ देखा और देखते ही आँखें दूसरी तरफ़ हटा कर बोला, "तुम यहाँ से अकेले होटल वापस जा सकते हो?"

"क्यों,"

"तुम नहीं चल रहे?" मैं ने पूछा।

"मैं ज़रा देर मे आऊँगा," वह उसी तरह आँखें दूर के एक पत्थर पर गड़ाये रहा।

"तो जब भी तुम चलोगे, तभी मैं भी चलूँगा", मैं ने कहा। "मुझे वहाँ जल्दी जा कर क्या करना है ?"

"नहीं," वह बोला। "अच्छा है तुम अकेले ही चले जाओ। मैं कह नहीं सकता मुझे लौटने में अभी कितनी देर लगे।"

मुझे समझ नहीं आ रहा था कि उस का भाव एकाएक ऐसा क्यों हो गया है। पर मैं ने उस से इस विषय में पूछना उचित नहीं समझा और उसे उसी तरह बैठे छोड़ कर वहाँ से चला आया। होटल में आ कर खाना खाया और फिर से घूमने निकल गया। जब वापस पहुँचा, तब भी हुसैनी नहीं आया था। मैं अपने कमरे में बैठ कर कुछ देर एक उपन्यास के पन्ने पलटता रहा। दस बजे के करीब सोने से पहले मैं ने फिर एक बार उस के कमरे की तरफ जा कर देख लिया। वह तब भी नहीं आया था। एक बार मन हुआ कि उसी पहाड़ी पर जा कर देख आऊँ, पर कुछ तो यह सोच कर कि इतनी रात तक वह वहाँ नहीं हो सकता, और कुछ आँखों में भरी नींद के कारण मैं ने वह ख़याल छोड़ दिया और अपने कमरे में आ कर लेट गया। लेटने पर कुछ देर लगता रहा कि मेरा पलँग स्टीमर की तरह डोल रहा है। फिर धीरे-धीरे मुझे नींद आ गयी।

मुझे सोये अभी थोड़ी ही देर हुई थी, जब दरवाज़े पर हलकी दस्तक सुनाई दी। मैं चौंक कर उठ बैठा। बत्ती जला कर दरवाज़ा खोला, तो सामने हुसैनी खड़ा था।

उस का चेहरा काफ़ी बदला हुआ था। आँखें लाल थीं और भाव ऐसा जैसे किसी अपराध में पकड़े जाने पर बाँह छुड़ा कर भाग आया हो। मैं ने सोचा कि वह शायद शराब पी कर आया है। पर वह शराब पी कर नहीं आया था।

"माफ़ करना, मैं ने तुम्हारी नींद ख़राब की है," उस ने ओंठ पड़ते हुए कहा। "वैसे माफ़ी तो मुझे उस वक़्त के लिए भी माँगनी चाहिए, पर इस तरह तकल्लुफ़ बरतने लगूँगा तो असली बात पर नहीं आ सकूँगा। मैं इस वक़्त तुम से एक मदद चाहता हूँ।"

"बताओ, क्या बात है?" मैं बाहर निकल आया। "तुम ऐसे क्यों हो रहे हो?"

"खास बात कुछ भी नहीं है। तुम कपड़े बदल लो और मेरे साथ कुछ दूर घूमने चलो।"

"क्या इन्सानों की मदद चाहिए?"

"हाँ, तुम इन्सानों की समझ लो।"

मैं ने कपड़े पहन कर दरवाज़े को ताला लगाया और उस के साथ चल पड़ा। सड़क पर आ कर वह बोला, "बताओ, किस तरफ़ चलें?"

मैं बिल्कुल नहीं समझ पा रहा था। वह खुद तो मुझे ले कर आया था और मुझी से पूछ रहा था—"किस तरफ़ चलें।"

"तुम जिस तरफ़ भी चलना चाहो," मैं ने कहा।

"नहीं," वह बोला। तुम जिस तरफ़ कहो, उसी तरफ़ चलते हैं। मैं इस वक्त तुम्हारी मरज़ी से चलना चाहता हूँ। मेरी अपनी मरज़ी कुछ नहीं है।"

"तो किसी पार्क में चलें?"

"मुझ से मत पूछो। कहो कि पार्क में चलें।"

"तो ठीक है किसी पार्क में चलते हैं। यहाँ के रास्ते मैं नहीं जानता, इस लिए ले चलना तुम्हीं को होगा।"

कुछ देर हम चुपचाप चलते रहे। उस-जैसा जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति की ऐसी मनःस्थिति अस्वाभाविक नहीं था। परन्तु किस विशेष कारण से वह एकाएक ऐसा हो गया है, उस का मैं अनुमान नहीं लगा पा रहा था।

पार्क में पहुँच कर हम एक जगह घास पर बैठ गये। मैं ने उस से कुछ नहीं पूछा। कुछ देर बाद वह खुद ही बोला, "देखो दोस्त, मेरे इस अटपटेपन का बुरा नहीं मानना। मैं रास्ते में सोचता आ रहा था कि तुम मुझ से इस सनक की वजह पूछोगे, तो मैं क्या बताऊँगा। असल बात मैं नहीं बताना चाहता था। पर तुम ने कुछ नहीं पूछा, इस लिए मैं अब तुम से वह बात छिपा कर नहीं रख सकता।"

वह बाँहें पीछे फैला कर बैठ गया। आँखें उस कोण पर रख कर जहाँ से कि वह मेरे सिर से ऊपर-ही-ऊपर देख सकता था, धीरे-धीरे कहने लगा, "तुम

ने देखा था उस वक्त पहाड़ी पर बैठे हुए मेरी तबीयत एकाएक बहुत उदास हो गयी थी। वैसे यह कोई नयी चीज़ नहीं है, बहुत बार मेरे साथ ऐसा होता है। जब मुझे घर से निकले दो-तीन महीने हो जाते हैं, तो अक्सर इस तरह के मौके आने लगते हैं। मेरा काम घूम कर ऑर्डर लेने का है और जिस किसी शहर में मैं जाता हूँ, वहाँ चार-पाँच बजे तक सौदागरों से मिल कर अपना काम पूरा कर लेता हूँ। शाम को मैं बिलकुल अकेला पड़ जाता हूँ, और अकेला ही कहीं इधर-उधर घूमने निकल जाता हूँ।"

उस ने आँखें एक बार नीचे ला कर मुझे देखा, फिर उन्हें उसी कोण पर रख कर बोला, "ऐसे में मेरी हमेशा यही कोशिश रहती है कि मैं लोगों के बीच में रहूँ, किसी ऐसी ही जगह जाऊँ जहाँ चार आदमी और भी हों। पर कभी-कभी जान-बूझ कर मैं किसी अकेली जगह पर चला जाता हूँ, और वहाँ यही उदासी मुझे घेर लेती है। क्यों मेरी ऐसी ख्वाहिश होती है और क्यों मैं जान-बूझ कर ऐसी जगह जाता हूँ, मैं नहीं जानता। शायद ऐसे मौके पर उदास हो कर ही मुझे कुछ राहत मिलती है। मैं बैठ कर कई-कई घण्टे सोचता रहता हूँ और सोचते हुए मुझे लगता है कि मेरी ज़िन्दगी का कोई मतलब नहीं है। मैं रात-दिन बसों-गाड़ियों में सफ़र करता हूँ, घटिया होटलों का गन्दा खाना खाता हूँ, और मेरे नसीब में इतना सुख भी नहीं बदा कि अपनी शामें ही चन्द दोस्तों या अपने घर के लोगों के बीच बिता सकूँ। बीवी-बच्चों की मुहब्बत भी मेरे लिए जैसे एक खयाली-सी चीज़ है। और इस सब के बारे में सोचते हुए मन इतना परेशान हो उठता है कि मैं अपने-आप से भाग खड़ा होना चाहता हूँ। आज शाम उस पहाड़ी पर बैठा हुआ मैं यही सोच रहा था कि शाम-भर के लिए एक आदमी को मैं अपना साथी बनाता हूँ, उस के साथ कुछ वक्त बिता कर मुझे खुशी हासिल होती है, पर आने वाली दूसरी शाम के लिए मैं उस के साथ की उम्मीद नहीं कर सकता। आज तुम मेरे साथ हो, पर कल मैं चिकमंगलूर चला जाऊँगा और तुम बंगलोर। एक बार की बात हो तो आदमी बरदाश्त भी कर ले। पर मेरी तो रोज़-रोज़ की ज़िन्दगी ही यह है। इस के अलावा ...।"

उस ने फिर एक बार मेरी तरफ़ देखा और पलकें झुका कर घास पर आँखें टिकाये बोला, "इस के अलावा एक बात और भी है। मैं अपनी बीवी से

बहुत मुहब्बत करता है और जानता हूँ कि वह भी मुझ से उतनी ही मुहब्बत करती है। फिर भी…।"

वह बोलते-बोलते रुक गया। मैं चुप रह कर उस की तरफ़ देखता रहा। कुछ देर असमंजस में रह कर कि आगे बात करे या नहीं, वह बोला, "तुम शायद [illegible] मन में ही उपहास-भरा [illegible] पर मैं [illegible] आदमी जैसा महसूस कर सकता है—शायद और [illegible] इस मसले की [illegible] जिन्दगी बसर करते चले गये। मुझे [illegible] महीनों में एक तूफ़ान-सा उठता महसूस होता है। उस वक्त मुझे लगता है कि मेरी सूरत एक पागल जैसी नज़र आ रही होगी। मेरे मन में कई तरह के ख़याल उठने लगते हैं। कभी सोचता हूँ कि यह सिर्फ़ एक जिस्मानी ज़रूरत है जिसे पूरा कर लेने में कोई हर्ज नहीं। फिर सोचता हूँ कि जिस्मानी ज़रूरत सिर्फ़ मर्द की ही नहीं, औरत को भी तो वैसी तरह महसूस होती है। फिर मेरे मन में यह सवाल शैतान की तरह सिर उठाने लगता है कि जब मर्द के लिए इस ज़रूरत पर क़ाबू पाना इतना मुश्किल है, तो औरत के लिए भी क्या वैसा ही नहीं होगा? और तब मेरे दिमाग़ पर हथौड़े चलने लगते हैं कि मुझे क्या पता है, मैं कैसे कह सकता हूँ? मैं जानता हूँ कि यह फ़क़त मेरे अन्दर की कमज़ोरी है। मेरी बीवी मुझ से बेहद प्यार करती है और जब भी मैं घर जाता हूँ, हमेशा यही कहती है कि मैं यह नौकरी छोड़ दूँ, और बच्चों के पास घर पर ही रहूँ। फिर भी मैं अपने वहम से बच नहीं पाता। मैं जितना अपने को ऐसे ख़यालात के लिए कोसता हूँ, ये उतना ही मुझे और तंग करते हैं।

"आज तुम्हारे चले आने के बाद मैं काफ़ी देर वहाँ बैठा रहा। यही परेशानी फिर मेरे दिमाग़ में घर किये थी। जब वहाँ से चला, तो ख़याल था कि खाने के वक़्त तक होटल में पहुँच जाऊँगा। पर रास्ते में एक आदमी धीमी आवाज़ में कुछ कहता मेरे पास से निकला। मैं समझ गया कि वह किसी छोकरी का दलाल है। अपने दिमाग़ पर से मेरा क़ाबू उठने लगा। मैं ने रुक कर पीछे की तरफ़ देखा। वह आदमी लौट कर मेरे पास आ गया। मैं ने उस से बात की। वह कहने लगा कि एक प्रायवेट लड़की है, पाँच रुपये लेगी। मैं उस के साथ चल दिया। वह मुझे कई सड़कों से घुमा कर एक कच्चे रास्ते से नीचे ले

गया। वहाँ दो-तीन झोंपड़ियाँ थीं। उन में से एक के अन्दर हम पहुँच गये। अन्दर लालटेन की रोशनी में एक जवान औरत अपने बच्चे को खाना खिला रही थी। मुझे देख कर वह उठ खड़ी हुई। वह आदमी अपनी ज़बान में उस से बात करने लगा। पर तभी मेरी आँखों के सामने अपने घर का नक़्शा घूम गया। मुझे ख़याल आने लगा कि मेरी बीवी तो शायद इस वक़्त वहाँ ख़ुदा से मेरी सलामती की दुआ माँग रही होगी, और मैं यहाँ इस तरह अपने को ज़लील करने जा रहा हूँ। फिर मैं ने उस घर की मुफ़लिसी को देखा और मुझे अपने मुफ़लिसी के दिन याद आने लगे। मेरे साथ आया दलाल बच्चे को और उस की थाली को उठा कर बाहर जाने लगा, तो मैं ने उस से कहा कि वह बच्चे को वहीं रहने दे—पहले बाहर चल कर मेरी बात सुन ले। वह इस से थोड़ा हैरान हुआ, पर बिना कुछ कहे मेरे साथ बाहर आ गया। बाहर आ कर मैं ने उस से कहा कि मुझे वह लड़की पसन्द नहीं है और कहते ही झट से वहाँ से चल पड़ा। वह आदमी पक्की सड़क तक मेरे पीछे-पीछे आया। कहता रहा कि मैं पाँच नहीं देना चाहता तो चार ही रुपये दे दूँ, चार नहीं तो तीन ही दे दूँ—पर मैं ने उसे कोई जवाब नहीं दिया।

"पक्की सड़क पर आ कर मैं बिना रास्ता जाने एक तरफ़ को चलने लगा। मेरा पहले भी ऐसे दलालों से वास्ता पड़ा है, पर मेरा ख़ुदा जानता है कि पहले कभी मैं इस हद तक आगे नहीं गया। मैं ने उसे कोई जवाब नहीं दिया, तो वह आदमी नाराज़ हो कर लौट गया। मुझे उस वक़्त अपने से नफ़रत हो रही थी। सोच रहा था कि अगर मेरी ज़िन्दगी भी उसी मुफ़लिसी और तंगहाली में बीतती, तो क्या कहा जा सकता है कि मेरे घर में आज क्या हो रहा होता? अब चाहे कितनी भी परेशानी है, पर वह तंगहाली तो नहीं है। किसी तरह शराफ़त की ज़िन्दगी तो जी रहे हैं। लेकिन कुछ दूर आ कर मेरे दिमाग़ में फिर वही बात सिर उठाने लगी कि आख़िर मैं उस हद को हाथ तो लगा ही आया हूँ—क्या मरद जिस हद तक जा सकता है, औरत उस हद तक नहीं जा सकती? इस से फिर वही ख़याली बवण्डर मेरे दिमाग़ में उठने लगा कि मुझे क्या पता है, मैं कैसे कह सकता हूँ? तब मेरा मन होने लगा कि लौट चलूँ। अभी थोड़ा ही रास्ता आया हूँ, लौट कर वह घर ढूँढ सकता हूँ। एक

बाहर [illegible] आँखें भरी हुई थीं । पर गली में मैं ने एक गुज़रते तांगे को रोक लिया और उसे अपने होटल का नाम बता दिया । तांगे में बैठे हुए मेरा मन होता रहा कि लौट कर [illegible] जाऊँ, या वापस उसी तरह से चलूँ । पर घोड़ा धीरे-धीरे चल निकला और कुछ ही देर में होटल के बाहर आ लगा ।

"होटल में आ कर भी मैं अपने दरवाज़े के बाहर खड़ा एक मिनट सोचता रहा । एक मन था कि दरवाज़ा न खोलूँ और वापस चला जाऊँ । वह घर नहीं था और घर नहीं । तुम्हें भी कई मकान मिल जायेंगे । पर दूसरा मन मुझे धकेल कर तुम्हारे दरवाज़े के बाहर ले गया और मैं ने दरवाज़ा खटखटा दिया । उस के बाद मैं तुम्हारे साथ हूँ ।"

उस की आँखों में उस घटना की छाया अब भी मँडरा रही थी । मैं उस का ध्यान बँटाने के लिए और-और चीज़ों पर बात करने लगा ।

हम काफ़ी देर वहीं बैठे रहे । उस ने पहली रात स्टीमर में ठीक से नहीं सो पाया था, इस लिए मेरी आँखें नींद से झिपी जा रही थीं । कुछ देर बाद उसे थोड़ा स्वस्थ पा कर मैं ने उस से वापस चलने का प्रस्ताव किया । हुसैनी आँखें झपकाता चुपचाप उठ खड़ा हुआ और मेरे साथ चल दिया । रास्ते में वह मुझ से थोड़ा आगे-आगे चलता रहा—जैसे कि अब भी अपना पीछा करती किसी चीज़ से बचना चाह रहा हो ।

सुबह जब मैं सो कर उठा, ग्यारह बज चुके थे । हुसैनी नहा कर गुसलखाने से लौट रहा था । मुझे देख कर वह मुसकरा दिया । उस के चेहरे पर हमेशा का खुशदिली का भाव लौट आया था ।

"नींद पूरी हो गयी ?" खिड़की के जंगले से अन्दर देखते हुए उस ने पूछा ।

"हाँ, हो ही गयी ।"

"तो नहा कर तैयार हो जाओ । आज मैं तुम्हारी दावत कर रहा हूँ ।"

मैं पल-भर उसे देखता रहा । फिर मैं भी मुसकरा दिया । "उन पांच रुपयों की ?" मैं ने पूछा ।

"नहीं," वह अपने उभरे दाँत उघाड़ कर बोला । "वे पांच रुपये तो मिठाई के लिए घर बीवी को भेज रहा हूँ । दावत का एक रुपया तुम्हारा नजराना है ।

नहा लो, तो ऊपर मेरे कमरे में आ जाना।" और आँखों में वही अपनी खास चमक ला कर मुसकराता हुआ वह खिड़की के पास से हट गया।

हुसैनी जो बात कह गया था, उस से मुझे गोगोल की कहानी 'ओवरकोट' का अन्त याद हो आया और मैं मन-ही-मन मुसकरा दिया। पर सोचा कि हुसैनी ने वह कहानी भला कहाँ पढ़ी होगी!

समुद्र-तट का होटल

दूसरे दिन मैं ने मंगलूर से कनानोर (कण्णूर) की गाड़ी पकड़ ली। शिमला में जिस व्यक्ति ने मुझे कनानोर में रहने की सलाह दी थी, उस ने यह भी कहा था कि वहाँ समुद्र-तट पर एक छोटा-सा होटल है जो काफ़ी सस्ता है और कि वहाँ के डाइनिंग हाल में बैठ कर चाय पीते हुए आदमी समुद्र के क्षितिज से गुज़रते जहाज़ों को देख सकता है। मेरे दिमाग़ में वह नक़्शा इस तरह से जमा था कि वहाँ पहुँचने से पहले ही मैं अपने को उस रूप में वहाँ बैठे और चाय की चुस्कियाँ लेते देख रहा था।

मंगलूर से कनानोर तक की यात्रा में मैं ने देखा कि रेल की पटरी के दोनों ओर थोड़े-थोड़े अन्तर पर बने घरों की शृंखला इस तरह चली चलती है कि तय नहीं किया जा सकता कि एक बस्ती कहाँ समाप्त हुई और दूसरी कहाँ से शुरू हुई। सारा प्रदेश ही जैसे एक बहुत बड़ा गाँव है जिस में नारियल के पेड़ों से घिरे छोटे-छोटे घर एक-दूसरे से थोड़े-थोड़े फ़ासले पर बने हैं। बीच में खेत हैं। कहीं खेतों में (शायद पक्षियों को डराने के लिए) बाँस पर लटकाया गया कपड़े का गुड्डा दिखाई दे जाता, कहीं कोई ग्राम-देवता और कहीं बिजली के तारों पर बैठी तोतों की पंक्तियाँ। जब गाड़ी समुद्र-तट के साथ-साथ चलती, तो समुद्र पर उड़ते कजल काक (सीगल) और दूसरे पक्षी ध्यान खींच लेते।

एक घर के बाहर खड़ी [illegible], [illegible] नदी का [illegible] हरा-भरा [illegible],
[illegible] के किनारे के पास एक-आध [illegible] पानी में पेट के बल लेट कर बात करते मछुआरे, [illegible] जैसी [illegible] शाकिर, [illegible] लहरों में से जूझती मछुआरिनें [illegible] पानी में [illegible] इस साधारण जीवन में भी मुझे एक असाधारणता प्रतीत हो रही थी—क्यों कि मेरी दृष्टि एक निवासी की नहीं, एक यात्री की थी।

कन्नानोर, पहुँचने पर पता चला कि वहाँ समुद्र-तट पर एक ही होटल है—चोईस। मैं स्टेशन से सीधा वहीं चला गया। यह एक युरोपियन होटल था, जहाँ अकसर रिटायर्ड युरोपियन अफ़सर अपनी खोयी हुई सेहत वापस लाने के लिए हफ़्ता-दो-हफ़्ता यहाँ आ कर ठहरते थे। वहीं से पता चला कि समुद्र-तट पर एक और होटल भी था (और शायद उसी के विषय में मुझे बतलाया गया था) जो दो साल पहले बन्द हो चुका था। चोईस काफ़ी महँगा होटल था और मैं अपने दो महीने के बजट में वहाँ कुल बीस दिन रह सकता था। पर मैं ने उस समय वहाँ एक कमरा ले लिया। सोचा कि आगे की बात चाय पी कर आराम से तय करूँगा।

चोईस होटल ठीक वैसी जगह नहीं था जैसी मैं चाहता था। वह खुले बीच पर नहीं, तट के ऊँचे कगार पर बना था। आगे एक छोटा-सा लॉन था, जिस की मुँडेर के पास खड़े हो कर नीचे समुद्र की तरफ़ झाँका जा सकता था। पर मैं ऐसी जगह चाहता था जहाँ से सीधे जा कर समुद्र की लहरों को अपने पर लिया जा सके और जिस की सीढ़ियों पर बैठ कर अपनी ओर बढ़ते ज्वार की प्रतीक्षा की जा सके।

चोईस में अपने कमरे के बरामदे में बैठ कर चाय पीते हुए भी मैं आगे के लिए कुछ निश्चय नहीं कर सका। दुविधा थी कि क्या पता है और कहीं जा कर भी वैसी ही समस्या का सामना नहीं करना पड़ेगा? आखिर सोचा कि थोड़ी देर बाहर घूम आऊँ—आ कर तय करूँगा कि कल की क्या योजना होगी।

होटल से सटा हुआ एक युरॅपियन क्लब था। क्लब के इस तरफ़ थोड़े-से घर थे और खुला कगार। मैं टहलता हुआ कगार के सब से ऊँचे हिस्से पर

चला गया। वहाँ एक चट्टान पर खड़े हो कर देखा कि तीस-चालीस फुट नीचे खुला बीच है जो दूर तक चला गया है। एक छोटा-सा बीच बायीं ओर भी है। बड़े बीच पर बहुत-से लोग थे। छोटे बीच पर एक युरोपियन परिवार के पाँच-छह लोग स्विमिंग् कास्ट्यूम पहने लहरों में उछल-कूद कर रहे थे। उतनी ऊँचाई से उस दृश्य को देखना जमीन से ऊपर उठ कर ज़मीन को देखने की तरह था। दूर एक जहाज़ समुद्र के अर्द्ध गोलाकार क्षितिज पर दायीं ओर से दाखिल हो रहा था। वह भी जैसे मुझ से नीचे की दुनिया के रंगमंच पर ही चल रहा था। छपाक—एक लहर कगार की चट्टानों से ज़ोर से टकरायी। मैं नीचे बड़े बीच पर जाने के लिए चट्टानों पर से कूदने लगा।

"कोबा!" दो चट्टानें उतरते ही किसी को कहते सुना। जिस चट्टान पर मैं था, उस से थोड़ा हट कर साथ की चट्टान पर एक साँप रेंग रहा था। कई लोग उसे दूर से देख रहे थे। वह गहरे मोतिया रंग का साँप था। शरीर पर काले रंग की हलकी-हलकी धारियाँ। वह बहुत सतर्क हो कर चल रहा था—शायद मन में यह आस-पास से सुनाई देती आवाज़ों से आतंकित था। मैं अपनी चट्टान पर जहाँ का तहाँ रुक कर उसे देखता रहा। उस का शरीर चट्टान पर उसी तरह बहता लग रहा था जैसे बने हुए रास्ते पानी की पतली धार। रास्ते का निर्णय करने के लिए उस का फण ज़रा-सा मुड़ता, फिर बाकी शरीर उसी रास्ते से निकल जाता। एक लड़के ने उस की तरफ पत्थर फेंका। उस ने एक बार फण उठाया, पर अगले ही क्षण दो चट्टानों के बीच की मिट्टी में गुम हो गया।

मैं फिर चट्टानों पर से कूदने लगा, और दिमाग़ में साँप की सी सतर्कता लिये एक पोस्तर पर बने टूटे पुल से हो कर बीच पर पहुँच गया।

सामने समुद्र की लहरें बड़ी-बड़ी शार्क मछलियों की तरह सिर उठा रही थीं। कुछ मछुए साथ मिल कर दो डूँगों को पानी की तरफ़ धकेल रहे थे। डूँगे धीरे-धीरे सरक रहे थे और रेत पर गहरी लकीरें खिंचती जा रही थीं। एक डूँगा पानी में पहुँच गया और सामने से आती लहर पर सवार हो कर परे निकल गया। फिर दूसरी लहर पर सवार हो कर काफ़ी आगे चला गया। दूसरा डूँगा भी तब तक पानी में पहुँच गया था। वह एक पिछड़े साथी की तरह

[illegible] [illegible]

[illegible] [illegible]

[illegible] [illegible]

[illegible] [illegible]

एक [illegible] [illegible]

एक [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] आते हैं !"

पोर्टिंग । [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] कहते हुए उस ने [illegible]

लिए [illegible] [illegible] एक समस्या और आवाज़ हो

तट पर एक [illegible] [illegible] है । आप ने देखा ही होगा।"

गया था) औ [illegible] मैं ने कुर्सी बनाते रखते हुए कहा।

और मैं अपने [illegible] [illegible] लिए ऐसी ही जगह सोच

मैं ने उस समय [illegible] [illegible] है । मैं अपने

पी कर आराम से [illegible] [illegible]," वह अब और आगे ला कर

पोर्टिंग होटल [illegible] [illegible] लगा ।

पर नहीं, तट के ऊँ [illegible] [illegible] मैं ने कहा ।

की मुँडेर के पास ख [illegible] और वह कुरसी के आगे आ गया । मुझे

मैं ऐसी जगह चाहता [illegible] कुरसी पर बैठ जायेगा ।

लिया जा सके और जि [illegible]

प्रतीक्षा की जा सके । [illegible] मैं ने कहा ।

चोईस में अपने कमरे [illegible] और वह, "अच्छा, तुसी साडे पंजाबी

लिए कुछ निश्चय नहीं कर [illegible] कर मुझ से लिपट गया ।

कर भी वैसी ही समस्या का [illegible] ओर जाने दिये । मेरे गिर्द से बाँहें

थोड़ी देर बाहर घूम जाऊँ– [illegible] में ले लिया और कहा कि

होगी । [illegible] की नज़र में 'रब' के निज

होटल से सटा हुआ एक यु [illegible]

घर थे और खुला कगार । मैं ट [illegible] कि मैं उसी के पास

ला गया। वहाँ एक चट्टान पर खड़े हो कर देखा कि दोना-पाउला छूट ीचे खुला बीच है जो दूर तक चला गया है। एक छोटा-सा बीच बायीं ओर ी है। बड़े बीच पर बहुत-से लोग थे। छोटे बीच पर एक यूरोपियन परिवार : पाँच-छह लोग स्विमिंग कास्ट्यूम पहने लहरों में उछल-कूद कर रहे थे। उतनी ऊँचाई से उस दृश्य को देखना ज़मीन से ऊपर उठ कर ज़मीन को देखने ी तरह था। दूर एक जहाज़ समुद्र के अर्द्ध गोलाकार क्षितिज पर दायीं ओर े दाखिल हो रहा था। वह भी जैसे मुझ से नीचे की दुनिया के रंगमंच पर ही चल रहा था। छपाक—एक लहर कगार की चट्टानों से ज़ोर से टकरायी। मैं नीचे बड़े बीच पर जाने के लिए चट्टानों पर से कूदने लगा।

"कोबरा!" दो चट्टानें उतरते ही किसी को कहते सुना। जिस चट्टान पर मैं था, उस से थोड़ा हट कर साथ की चट्टान पर एक साँप रेंग रहा था। कई लोग उसे दूर से देख रहे थे। वह गहरे मोतिया रंग का साँप था। शरीर पर काले रंग की हलकी-हलकी धारियाँ। वह बहुत सतर्क हो कर चल रहा था—शायद मन में वह आस-पास से सुनाई देती आवाज़ों से आतंकित था। मैं अपनी चट्टान पर जहाँ का तहाँ रुक कर उसे देखता रहा। उस का शरीर चट्टान पर उसी तरह बहता लग रहा था जैसे बने हुए रास्ते पानी की पतली धार। रास्ते का निर्णय करने के लिए उस का फन ज़रा-सा मुड़ता, फिर बाकी शरीर उसी रास्ते से निकल जाता। एक लड़के ने उस की तरफ़ पत्थर फेंका। उस ने एक बार फन उठाया, पर अगले ही क्षण दो चट्टानों के बीच की मिट्टी में गुम हो गया।

मैं फिर चट्टानों पर से कूदने लगा, और दिमाग़ में साँप की सी सतर्कता लिये एक पोखर पर बने टूटे पुल से हो कर बीच पर पहुँच गया।

सामने समुद्र की लहरें बड़ी-बड़ी शार्क मछलियों की तरह सिर उठा रही थीं। कुछ मछुए साथ मिल कर दो डोंगों को पानी की तरफ़ धकेल रहे थे। डोंगे धीरे-धीरे सरक रहे थे और रेत पर गहरी लकीरें खिंचती जा रही थीं। एक डोंगा पानी में पहुँच गया और सामने से आती लहर पर सवार हो कर परे निकल गया। फिर दूसरी लहर पर सवार हो कर काफ़ी आगे चला गया। दूसरा डोंगा भी तब तक पानी में पहुँच गया था। वह एक पिछड़े साथी की तरह

तेज़ी से लहरों को पार करता कुछ क्षणों में ही पहले दृश्य को पीछे छोड़ कर आगे बढ़ गया ।

ऊपर कगार की चट्टानों पर कुछ लोग खड़े हुए थे जिन की आकृतियाँ सूर्यास्त की झिलमिल में स्याह पत्थर की मूर्तियों-जैसी लग रही थीं । बीच से देखने पर अब मुझे ऊपर की दुनिया अपने से दूर और अलग प्रतीत हो रही थी । कुछ लोग चट्टानों पर से कूदते हुए नीचे आ रहे थे । मेरा मन हुआ कि मैं फिर से ऊपर चला जाऊँ और फिर से उसी तरह कूदता हुआ नीचे आऊँ, परन्तु मैं उस समय नंगे पैर टखनों-टखनों पानी में खड़ा था और लहरों के लौटने पर पैरों के नीचे से सरकती रेत शरीर में एक झुनझुनाहट भर रही थी । इसलिए मैं उसी तरह वहीं खड़ा ईर्ष्या से लोगों को चट्टानों से कूदकर आते देखता रहा ।

पानी में सूर्यास्त के कई-कई हलके-गहरे रंग झिलमिला रहे थे । तांबई, बैंजनी, फ़ाख्ताई । किनारे की तरफ़ आती हर लहर के आगे झाग की सफ़ेद जाली बन जाती थी जो लहर के लौट जाने पर भी कुछ देर बनी रहती थी । बढ़ता पानी सूखी रेत को भिगो जाता, परन्तु पानी के लौटते ही रेत फिर सूखने लगती । पानी उसे फिर भिगो जाता और कितने ही केकड़े उछलते हुए आ कर रेत में सूराख कर के उन में दुबक जाते । टिर-री, टिर-री— यह स्वर सारे वातावरण में फैल रहा था । मुझे लगा कि वास्तव में ऐसे ही समय और वातावरण को सांझ कहा जा सकता है । दिल्ली-जैसे शहर में कभी सांझ नहीं होती । वहाँ समय के केवल दो ही चेहरे होते हैं—दिन और रात । या एक ही चेहरा—आधा स्याह, आधा सफ़ेद ।

एक बूढ़ा लुंगी पर पेटी बांधे, सिगरेट सुलगाये, छड़ी हिलाता टखने-टखने पानी में चल रहा था । कुछ लड़कियाँ अपने पेटीकोट पिण्डलियों तक उठा कर किनारे की ओर आती लहरों के ऊपर से उछल रही थीं । उधर छोटे बीच की तरफ़ से युरेंपियन परिवार के किलकारने की आवाज़ें आ रही थीं ।

मैं सोच रहा था कि बजट का चाहे जो हो, मैं कुछ दिन ज़रूर कनानोर में रहूँगा ।

वापस होटल में पहुँचा, तो देखा कि मेरे आसपास के दोनों कमरे उस बीच

लग गये हैं। वे दोनों कमरे एक ही परिवार ने ले लिये थे। उस समय लॉन में पति-पत्नी अपने चार बच्चों के साथ 'ढाई-छू' खेल रहे थे। सामने के कमरे में एक बूढ़ी मेम, जो गठिये की मरीज थी, अपनी नौकरानी के साथ ठहरी थी। वह अपने कमरे के बाहर खड़ी ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला कर उन लोगों को शाबाशी दे रही थी।

रात को वह बूढ़ी मेम अपनी नौकरानी के साथ उन लोगों के यहाँ ताश खेलने आ गयी। मुझे हर दो मिनिट के बाद उस की चीखती आवाज़ में 'गुड ग्रेशस' 'ओ माई लार्ड' और 'वट ए हैण्ड'-जैसे शब्द और एक मोटी धार के पाइप के सहसा खुल कर बन्द हो जाने-जैसी हँसी सुनाई देने लगी, तो मैं ने सोचा कि वहाँ रह कर अपना बजट खराब करने का कोई मतलब नहीं—मुझे चुपचाप बिस्तर बाँध कर अगली सुबह वहाँ से चल देना चाहिए।

पंजाबी भाई

परन्तु अगले दिन वहाँ सेवॉय होटल में मैं ने महीने-भर के लिए जगह ले ली—तीस रुपये में तीस दिन के लिए उतनी अच्छी जगह कहीं भी मिल सकती है, इस की मैं कल्पना तक नहीं कर सकता था। सेवॉय होटल समुद्र-तट पर नहीं था, पर तट के बहुत पास ही था। उस में खूब खुले बरामदे और बड़े-बड़े लॉन थे जिन में दिन-भर हवा आवारा घूमती थी। इतनी सस्ती जगह होने पर भी वहाँ रहने वाले लोग थोड़े से ही थे, इस लिए दिन-भर वहाँ का वातावरण शान्त रहता था। किसी ज़माने में वह होटल खूब चलता था और काफ़ी महँगा भी था। परन्तु स्वतन्त्रता के बाद वहाँ आकर रहने वालों की संख्या बहुत कम हो गयी थी, इसलिए वहाँ से खाने का प्रबन्ध हटा दिया गया था, और कमरे महीने के हिसाब से किराये पर दिये जाने लगे थे।

मैं मेज़ पर आगे को अपना पुस्तक ले कर कुछ लिख रहा था, जब एक लम्बा-सा युवक दरवाज़े के बाहर आ खड़ा हुआ।

"हलो," उस ने कहा।

मैं ने उस की ओर कुरसी से घूम कर उस की तरफ देखा। वह पाजामा कुरता पहने आँखों-आँखों में ज़रा मुस्करा रहा था।

"आइए," मैं ने औपचारिकता से कुरसी से उठते हुए कहा।

वह दहलीज़ तक आ गया। बोला, "आप शायद कल ही आये हैं!"

"जी हाँ, कल ही आया हूँ," मैं ने कहा।

"मैं ने रात को कमरे की बत्ती जलती देखी थी," कहते हुए उस ने दहलीज़ पार कर ली। "मुझे खुशी हुई कि चलो होटल का एक कमरा और आबाद हो गया है। वैसे तो यह होटल सुनसान पड़ा रहता है। आप ने देखा ही होगा।"

"फिर भी, मुझे जगह बहुत पसन्द है," मैं ने दूरी बनाये रखते हुए कहा। "काफ़ी खुली और एकान्त जगह है। मैं अपने लिए ऐसी ही जगह खोज रहा था।"

"आप इधर के रहने वाले तो नहीं लगते," वह अब और आगे आ कर मेरे सामने की कुरसी को पीठ से हिलाने लगा।

"जी नहीं, मैं उत्तर से आया हूँ," मैं ने कहा।

"उत्तर के किस इलाक़े से?" और वह कुरसी के आगे आ गया। मुझे लगा कि अब अगला सवाल पूछने तक वह जमकर कुरसी पर बैठ जायेगा।

"मैं पंजाब का रहने वाला हूँ," मैंने कहा।

सहसा उस की दोनों बाँहें फैल गयीं और वह, "अच्छा, तुसी साडे पंजाबी भरा ओ!" कहता हुआ मेज़ के गिर्द से आ कर मुझ से लिपट गया।

साँस रोक कर मैं ने आलिंगन के वे क्षण बीत जाने दिये। मेरे गिर्द से बाँहें हटा कर उस ने मेरा हाथ मज़बूती से अपने हाथ में ले लिया और कहा कि परदेश में एक 'पंजाबी भरा' का मिल जाना उस की नज़र में 'रब' के मिल जाने से कम नहीं है।

"कुछ दिन रहेंगे न यहाँ?" उस ने ऐसे पूछा जैसे कि मैं उसी के पास मेहमान बन कर ठहरा होऊँ।

"हाँ, महीना-बीस दिन तो रहूँगा ही," मैं ने कहा।

"यह तो बहुत ही अच्छी बात है," वह बोला। "मैं चार-पाँच रोज में वापस पंजाब जा रहा हूँ। मगर जितने दिन यहाँ हूँ, उतने दिन मेरे लिए कोई भी सेवा हो, तो बताने से संकोच न करें। दास हर वक्त हर सेवा के लिए हाजिर है।"

"देखिए, कोई ऐसी जरूरत हुई तो जरूर बताऊँगा," मैं ने कहा।

"मैं यहाँ एक साल से हूँ। हैण्डलूम का व्यापार करने आया था''''" कहता हुआ वह कुरसी पर बैठ गया और मुझे शुरू से अपना इतिहास सुनाने लगा। मैं ने अपने काग़ज हटा कर एक तरफ रख दिये और हथेलियों पर चेहरा टिकाये सामने बैठ कर उस की बात सुनने लगा। वह घण्टा-भर गला फाड़ कर मुझे बतला गया कि उस का नाम नन्दलाल कपूर है, उस का घर लुधियाना में है, उस के दो बच्चे हैं और दोनों ही बहुत खूबसूरत हैं क्यों कि दोनों उसी पर गये हैं, उस की बीवी उस की पसन्द की नहीं है, हैण्डलूम का बाजार बहुत मन्दा है, कन्नानोर में साँप बहुत निकलते हैं, मलयालम में अण्डे को मुट्टा कहते हैं और शाम को वहाँ फिल्म 'अनहोनी' दिखायी जा रही है जिसे मिस नहीं करना चाहिए।

"जब कभी अकेलापन महसूस हो, मेरे कमरे में चले आइएगा," उस ने उठ कर छाती के पास से कुरते को खुजलाते हुए कहा। "उसे भी आप अपना ही कमरा समझें। किसी तरह के तकल्लुफ़ में नहीं रहिएगा।"

वह चला गया तो मैं ने सोचा कि अच्छा है जो पहली ही भेंट में वह अपने बारे में सब कुछ बतला गया—अब न तो मेरे पास कुछ पूछने को बचा है, न ही उस के पास बतलाने को। आमने-सामने होने पर खैर-खैरियत पूछ लिया करेंगे, बस।

मेरे सामने सवाल था कि खाने की क्या व्यवस्था की जाये। बाजार दूर था और रोज दोपहर को धूप में इतना मील जाना मुश्किल था। मैं वहीं पास में ही कहीं प्रबन्ध कर लेना चाहता था। दिन में मैं ने होटल के चौकीदार को इस सम्बन्ध में बात करने के लिए बुला लिया। वह पहले वहाँ बटलर था और अब भी अपना परिचय बटलर के रूप में ही देता था। वह "बेल मास्टर, बट मास्टर'

कहता कमरे से बाहर आ खड़ा हुआ। मैं भी बरामदे में निकल कर उस से आस-पास के होटलों और बारों के विषय में पूछ-ताछ करने लगा। बटलर ने अपनी बटलरी अंग्रेज़ी में बताना शुरू किया कि कहाँ किस होटल में 'वेरी गुड फूड' मिलता है और कहाँ किस में '[illegible]'। तभी एक सोलह-सत्रह साल का दुबला-सा नवयुवक मेरे पास आ कर बोला, "सर, साहब आप को उधर बुला रहे हैं।"

"कौन साहब बुला रहे हैं?" मैं ने पूछा।

"कपूर साहब।"

"वे यहीं पर हैं?" मुझे आश्चर्य हुआ। मेरा ख़याल था कि वह तब तक अपने काम पर चला गया होगा।

"कमरे में हैं," लड़के ने कुछ लजाते हुए कहा।

"काम पर नहीं गये?"

"उन का दफ़्तर यहीं कमरे में ही है।"

"दिन-भर वे यहीं रहते हैं?"

इस से पहले कि लड़का जवाब देता, कपूर लुंगी-बनियान पहने अपने कमरे से बाहर निकल आया और वहीं खड़ा-खड़ा बोला, "आओ न बादशाहो! दास हर वक़्त सेवा के लिए यहीं हाज़िर रहता है।"

न जाने क्यों उस के फैले हुए निचले होंठ को देख कर मुझे उलझन-सी हुई। लगा जैसे उस होंठ की वजह से ही मेरा मन उस की घनिष्ठता से बचना चाहता हो।

"मैं खाना खा आऊँ, अभी थोड़ी देर में आता हूँ," मैं ने उस से कहा।

"मोतियों वाले ओ, मैं खाना खाने के लिए ही तो आप को बुला रहा हूँ," वह लुंगी को थोड़ा ऊपर उठाये हमारी तरफ़ बढ़ आया। "आप का खाना मेरे कमरे में तैयार रखा है।"

"देखिए कपूर साहब...," मैं बचने के लिए बहाना ढूँढ़ने लगा। पर वह बीच में ही मेरी बाँह हाथ में ले कर बोला, "अरे, आप तो तकल्लुफ़ करने लगे! मुझे आप अपना भाई नहीं समझते? शौकत, चलो, अन्दर चल कर प्लेटें लगाओ।"

शौकत उस लड़के का नाम था जो मुझे बुलाने आया था। उस के कपड़े इतने उजले थे कि मैं सहसा विश्वास नहीं कर सका कि वह कपूर का नौकर है।

कमरे में पहुँच कर कपूर ने कहा, "आप भी भाई साहब, हद करते हैं! यहाँ का खाना हम लोग खा सकते हैं? जितने दिन मैं यहाँ हूँ, उतने दिन तो मैं आप को बाहर कहीं खाने नहीं दूँगा। बाद में जहाँ जैसा मिले, खाते रहिएगा।"

कपूर अपना खाना खुद स्टोव पर बनाता था। शौकत सही माने में उस का नौकर नहीं था—एक बेकार नवयुवक था, जिसे उस ने 'यूँ ही कुछ' देने का वादा कर के *'यूँ ही कुछ थोड़ा-बहुत काम' करने के लिए रख छोड़ा था।* वह आठ-दस दिन से उस के पास था। कपूर उस से वे सभी काम लेता था जो एक साधारण नौकर से लिये जा सकते हैं। मगर शौकत आँखें झुकाये चुपचाप हर काम किये जाता था।

सब्ज़ी में इतनी मिर्च थी कि खाते हुए मेरी आँखों में पानी आ गया। कपूर ने यह देखा, तो बोला, "आप को शायद मिर्च ज्यादा पसन्द नहीं है। शाम से ज्यादा मिर्च नहीं डालूँगा।"

"शाम को आप खाना मेरे साथ बाहर खाइएगा," मैं ने उस की हर वक़्त की मेहमान-नवाज़ी से बचने के लिए कह दिया।

"आप फिर तकल्लुफ़ कर रहे हैं।" वह बोला। "मैं ने आप से एक बार कह दिया है कि मैं जब तक यहाँ हूँ, आप को बाहर खाना नहीं खाने दूँगा।"

एक कुत्ता दुम हिलाता दरवाज़े के पास आ खड़ा हुआ। कपूर ने एक चपाती उस की तरफ़ फेंकते हुए कहा, "देखिए, इस में इस का भी हिस्सा था। दाने-दाने पर खाने वाले की मोहर होती है, भाई साहब! वरना न कोई किसी को खिलाता है, और न ही कोई किसी का खाता है।" और कटोरे से मुँह लगा कर वह सब्ज़ी का बचा हुआ रसा एक ही घूँट में सुड़क गया।

मैं इस बार काफ़ी ज़ोर दे कर उस पर यह स्पष्ट करने की चेष्टा की कि मैं उस का हर समय का मेहमान बन कर नहीं रह सकता, इस लिए शाम का खाना मैं बाहर ही खाऊँगा।

"मैं आप की बात समझ रहा हूँ," वह बोला। "पर आप उस चीज़ की चिन्ता न करें। आप चाहें, तो थोड़ा-बहुत आटा-घी अपने पैसे से मँगवा लें।

पकाना तो मुझे ही है। एक की जगह दो के लिए पका लिया करूँगा। मिर्चें मैं अब से बहुत कम डालूँगा। सच कहता हूँ, यहाँ का खाना हम लोग नहीं खा सकते। मेरे आने के बाद तो मेरे हाथ का यह स्वयम्-पाकम् खाना ही पड़ेगा।" फिर शौकत की तरफ़ देख कर उस ने कहा, "तुम अब जाओ शौकत, दो बज रहे हैं। घर जा कर तुम्हें भी खाना खाना होगा। शाम को आते हुए जो-जो सामान मैं कहूँ, इन के लिए लेते आना। पैसे इन से ले जा।"

मुझे उस का फैला हुआ होंठ अब भी अजब लग रहा था, पर उस समय शौकत को पैसे देने से मैं इनकार नहीं कर सका। यह सोच कर कि दो-तीन रुपये जो खर्च होते हैं, हो जायें, उस ने ज्यादा कहा, तो दो-एक बार उस के साथ खा भी लूँगा, मैं ने जेब से दस का नोट निकाल कर शौकत को दे दिया। शौकत ने कपूर से पूछा कि क्या-क्या सामान लाना होगा।

"पाँच सेर आटा काफ़ी होगा," वह बोला। 'आधा सेर घी ले आना। सब्ज़ी जो भी ठीक समझो, ले आना। हाँ, अन्दर मसाले-आले देख लो कौन-से नहीं हैं।" फिर मेरी तरफ़ मुड़ कर उस ने पूछा, "नाश्ता आप क्या पसन्द करते हैं?"

उस के निकले हुए होंठ पर एक हलकी मुसकान मैं ने देखी जिसे उस ने होंठ पर ज़बान फेर कर दबा लिया।

"आप क्या नाश्ता करते हैं?" मैं ने मन में अपने को कोसते हुए पूछ लिया।

"सवेरे-सवेरे कुछ खास बनाने का तरद्दुद तो होता नहीं," वह बोला। "चाय के साथ सिर्फ़ दो टोस्ट और दो अण्डे ले लेता हूँ। आप भी यही ले लिया करें। यहाँ के इडली-डोसे से तो अच्छा ही है।" और फिर शौकत से बोला, "देखो, एक नौ आने वाली डबल रोटी, दो टिकिया मक्खन और छह अण्डे भी लेते आना।"

शौकत चलने लगा, तो कपूर ने फिर उस से एक सेकेण्ड रुकने को कहा और मुझ से पूछा, "यहाँ के केले अभी आपने खाये हैं कि नहीं?"

"यहाँ के केले कुछ खास होते हैं क्या?" मैं ने 'नहीं' कहने से बचने के लिए पूछ लिया।

"साम ?" वह उमड़ कर बोला। "जितनी फूड वैल्यू यहाँ के केले में होती है, उतनी और यहाँ के किसी फल में नहीं। चौरन्ज, एक दरजन बड़े वाले केले भी लेते आना। साहब एक बार उन का स्वाद भी चख कर देख लें।"

मेरा ऐसे कई व्यक्तियों से पाला पड़ा था जिन के साथ व्यवहार रखने में मुझे बहुत कठिनाई का अनुभव होता था। पर कपूर उन में सब से आगे था। शाम को उस ने अपने कमरे में खाना नहीं बनाया। कहा कि मैं ने जो उसे शाम को अपने साथ बाहर चल कर खाने का निमन्त्रण दिया था, वह उसी के खयाल में रहा है। मैं ने उसे साथ ले जा कर बाहर खाना खिलाया। दूसरे दिन वह दो बजे तक कहीं बाहर गया रहा और आने पर नाराज़गी ज़ाहिर की कि मैं ने खाना बाहर जा कर क्यों खा लिया—उस के लौटने की राह क्यों नहीं देखी। उस के बाद शाम को भी उस ने खाना नहीं बनाया। कहा कि उसे भूख नहीं है। दोपहर का खाना ही अढ़ाई-तीन बजे बना था—और यह सोच कर कि रात को कौन फिर से दरदुर करेगा, उस ने दोनों वक्त का एक-साथ ही खा लिया था। मगर जब मैं खाना खाने निकला, तो वह भी घूमने के इरादे से साथ हो लिया और होटल में बैठ कर सिर्फ़ साथ देने के लिए दो प्लेट बिरयानी खा गया। लौटते हुए मैं स्लैब वग़ैरह ख़रीदने लगा तो उसे भी कुछ चीज़ें ख़रीदने की याद हो आयी। चीज़ें बँधवा चुकने पर उसे ध्यान आया कि पैसे तो वह साथ लाया ही नहीं क्योंकि वह तो सिर्फ़ घूमने के इरादे से निकला था। दुकानदार से उस ने कह दिया कि वह सब पैसे मेरे नोट में से काट ले।

वापस होटल में पहुँचने पर आग्रह के साथ कहा कि मैं एक मिनिट उस के कमरे में आऊँ, उसे मुझ से कुछ ख़ास बात करनी है। मैं अन्दर-ही-अन्दर जल-भुन कर ख़ाक हो रहा था, इस लिए मैं उस के कमरे में नहीं गया। दस मिनिट बाद वह ख़ुद मेरे कमरे में चला आया।

"देखिए, मैं इस वक़्त कुछ पढ़ना चाहता हूँ" मैं ने उसे देख कर रूखे स्वर में कहा। "इस लिए और बात हम कल किसी वक़्त करेंगे।"

"हाँ-हाँ, शौक़ से पढ़िए," वह कुरसी पर बैठता बोला। "मैं तो सिर्फ़ एक मिनिट के लिए ही आया हूँ।"

"बताइए, क्या बात है एक मिनिट की ?" मैं ने खड़े-खड़े ही पूछा।

"आप बैठ जायें, मैं ही बात करूँ," वह बोला। "ऐसी क्या बात होगी ?"

"मैं बैठ जाऊँगा, आप बात बतायें।"

"आप मुझ से नाराज़ हैं क्या ?" उस ने ऐसा चेहरा बना कर कहा जैसे उस के साथ बहुत ज़्यादती की जा रही हो।

मैं ने अब अपने स्वर को थोड़ा सँभाल लिया। "मैं ने आप से ऐसी कोई बात नहीं कही जिस से लगे कि मैं नाराज़ हूँ।"

"नहीं हैं न नाराज़ ?" वह बोला। "मैं ने अच्छा किया जो पूछ लिया। मेरे मन का वहम निकल गया। मैं सोच रहा था कि मैं तो भाई साहब की इतनी कद्र करता हूँ, इन्हें अपने सगे भाई की तरह मानता हूँ फिर इन के चेहरे से क्यों लग रहा है जैसे ये मुझ से नाराज़ हैं ? चलो मेरी तसल्ली हो गयी।"

फिर जैसे मुझ पर उपकार कर के उस ने उठते हुए कहा, "मैं तो भाई साहब इनसानियत के नाते किसी के लिए भी कुछ भी करने को तैयार रहता हूँ। आप तो फिर अपने पंजाब के हैं। मेरी इतनी ही प्रार्थना है कि मुझे हर वक़्त अपना दास समझें और सेवा का मौक़ा देते रहें।"

एक बार दहलीज पार कर के वह फिर लौट आया। बोला, "देखिए, मुझे आप से थोड़ा-सा निजी काम है। पर मैं उस वक़्त आप को बताऊँगा। जिस वक़्त आप खाली होंगे। आप कब तक पढ़ते रहेंगे ?"

"जब तक नींद नहीं आती," मैं ने कहा।

"तो सोने से पहले मुझे आवाज़ दे लीजिएगा," वह चलता हुआ बोला। "वैसे मैं भी एक बार आकर देख जाऊँगा।"

मगर उस रात उसे मौक़ा नहीं मिला क्यों कि जब तक वह देखने के लिए आया, तब तक मेरे कमरे की बत्ती बुझ चुकी थी। अगले दिन सुबह मैं अख़बार देख रहा था, तो वह फिर आ पहुँचा और बोला, "इस वक़्त आप ख़ाली हैं ?"

मैं ने कुछ न कह कर अख़बार सामने से हटा दिया।

वह बैठ गया और जेब से एक चिट्ठी निकाल कर बोला, "मैं इस चिट्ठी का जवाब आप से लिखवाना चाहता हूँ।"

मेरा एक तो मन हुआ कि उसे कमरे से निकल जाने को कह दूँ, और दूसरा कि ज़ोर से ठहाका लगाऊँ। पर वह इस तरह कबूतर की नज़र से मुझे

देख रहा था कि मैं ये दोनों काम न कर के सिर्फ मुसकरा कर रह गया। मैं ने उसे समझाना चाहा कि मैं चिट्ठी लिखने की कला का विशेषज्ञ नहीं हूँ, सिर्फ़ कभी-कभार कहानी-वानी लिख लेता हूँ। पर उस ने मेरी बात जैसे सुनी ही नहीं। बोला कि वह एक ख़ास चिट्ठी है जो उस को प्रेमिका रूबी ने उसे सिकन्दराबाद से लिखी है, और क्यों कि वह मुझे अपना सब से विश्वस्त मित्र मानता है, इस लिए मुझे कम से कम इतनी राय तो उसे देनी ही चाहिए कि वह किस तरह उत्तर लिखे जिस से सारी बात उस में आ जाये।

और वह सारी बात यह थी कि रूबी की तरफ उस के चौदह रुपये निकलते थे। वह इस तरह पत्र लिखना चाहता था कि रूबी पर उस के प्रेम का प्रभाव भी बना रहे और उस की रकम भी वापस आ जाये।

रूबी पहले उसी होटल में उस के कमरे से दो कमरे छोड़ कर अपने भाई-भावज के साथ रहती थी। कपूर का विश्वास था कि वह चाहता तो ननद और भावज दोनों से प्रेम-सम्बन्ध स्थापित कर सकता था, पर उस ने अपने को गिरने नहीं दिया और केवल रूबी को ही प्रेम के लिए चुने रहा। रूबी से भी वह दूर-दूर से ही प्रेम करना चाहता था, पर रूबी कुछ इस तरह उस पर मरने लगी थी कि उस के लिए अपने प्रेम की पवित्रता बनाये रखना असम्भव हो गया था। एक रात (जब कि भूल से पीछे का दरवाजा खुला रह गया था), रूबी चुपके से उस के कमरे में चली आयी थी और उसे न चाहते हुए भी (क्यों कि बाहर बारिश होने लगी थी) अपने को रूबी की इच्छा पर छोड़ देना पड़ा था। उस के बाद जितने दिन रूबी वहाँ रही, दरवाजा खुला रहने की भूल दोहरायी जाती रही।

रूबी बीच-बीच में उस से एक-एक दो-दो रुपये उधार ले लेती थी और उस के सिकन्दराबाद जाने तक कपूर की डायरी में उस के नाम चौदह रुपये हो गये थे। वह जाते हुए कह गयी थी कि सिकन्दराबाद पहुँचते ही अपने बैंक से निकलवा कर भेज देगी, पर दो महीने होने को आये थे और उस ने रुपये भेजना तो दूर, अपने किसी पत्र में उस कर्ज का जिक्र तक नहीं किया था। महीना-भर पहले उस ने लिखा था कि वह उस के लिए दो बेड-कवर काढ़ कर भेज रही है, मगर बाद के पत्रों में उन का भी जिक्र नहीं था। अब कपूर चाहता

"आप बैठ जाएँ, तो मैं बात करूँ," वह बोला। "ऐसे क्या बात होगी?"

"मैं बैठ जाऊँगा, आप बात बताएँ।"

"आप मुझ से नाराज़ हैं क्या?" उस ने ऐसा चेहरा बना कर कहा जैसे उस के साथ बहुत ज़्यादती की जा रही हो।

मैं ने अब अपने स्वर को थोड़ा सँभाल लिया। "मैं ने आप से ऐसी कोई बात नहीं कही जिस से लगे कि मैं नाराज़ हूँ।"

"नहीं हैं न नाराज़?" वह बोला। "मैं ने अच्छा किया जो पूछ लिया। मेरे मन का वहम निकल गया। मैं सोच रहा था कि मैं तो भाई साहब की इतनी कद्र करता हूँ, इन्हें अपने सगे भाई की तरह मानता हूँ फिर इन के चेहरे से क्यों लग रहा है जैसे ये मुझ से नाराज़ हैं? चलो मेरी तसल्ली हो गयी।"

फिर जैसे मुझ पर उपकार कर के उस ने उठते हुए कहा, "मैं तो भाई साहब इनसानियत के नाते किसी के लिए भी कुछ भी करने को तैयार रहता हूँ। आप तो फिर अपने पंजाब के हैं। मेरी इतनी ही प्रार्थना है कि मुझे हर वक़्त अपना दास समझें और सेवा का मौक़ा देते रहें।"

एक बार दहलीज़ पार कर के वह फिर लौट आया। बोला, "देखिए, मुझे आप से थोड़ा-सा निजी काम है। पर मैं उस वक़्त आप को बताऊँगा। जिस वक़्त आप ख़ाली होंगे। आप कब तक पढ़ते रहेंगे?"

"जब तक नींद नहीं आती," मैं ने कहा।

"तो सोने से पहले मुझे आवाज़ दे लीजिएगा," वह चलता हुआ बोला। "वैसे मैं भी एक बार आकर देख जाऊँगा।"

मगर उस रात उसे मौक़ा नहीं मिला क्यों कि जब तक वह देखने के लिए आया, तब तक मेरे कमरे की बत्ती बुझ चुकी थी। अगले दिन सुबह मैं अख़बार देख रहा था, तो वह फिर आ पहुँचा और बोला, "इस वक़्त आप ख़ाली हैं?"

मैं ने कुछ न कह कर अख़बार सामने से हटा दिया।

वह बैठ गया और जेब से एक चिट्ठी निकाल कर बोला, "मैं इस चिट्ठी क जवाब आप से लिखवाना चाहता हूँ।"

मेरा एक तो मन हुआ कि उसे कमरे से निकल जाने को कह दूँ, औ दूसरा कि जोर से ठहाका लगाऊँ। पर वह इस तरह कबूतर की नजर से मुः

देख रहा था कि मैं ये दोनों काम न कर के सिर्फ़ मुसकरा कर रह गया। मैं ने उसे समझाना चाहा कि मैं चिट्ठी लिखने की कला का विशेषज्ञ नहीं हूँ, सिर्फ़ कभी-कभार कहानी-वानी लिख लेता हूँ। पर उस ने मेरी बात जैसे सुनी ही नहीं। बोला कि वह एक ख़ास चिट्ठी है जो उस की प्रेमिका रूबी ने उसे सिकन्दराबाद से लिखी है, और क्यों कि वह मुझे अपना सब से विश्वस्त मित्र मानता है, इस लिए मुझे कम से कम इतनी राय तो उसे देनी ही चाहिए कि वह किस तरह उत्तर लिखे जिस से सारी बात उस में आ जाये।

और वह सारी बात यह थी कि रूबी की तरफ़ उस के चौदह रुपये निकलते थे। वह इस तरह पत्र लिखना चाहता था कि रूबी पर उस के प्रेम का प्रभाव भी बना रहे और उस की रकम भी वापस आ जाये।

रूबी पहले उसी होटल में उस के कमरे से दो कमरे छोड़ कर अपने भाई-भावज के साथ रहती थी। कपूर का विश्वास था कि वह चाहता तो ननद और भावज दोनों से प्रेम-सम्बन्ध स्थापित कर सकता था, पर उस ने अपने को गिरने नहीं दिया और केवल रूबी को ही प्रेम के लिए चुने रहा। रूबी से भी वह दूर-दूर से ही प्रेम करना चाहता था, पर रूबी कुछ इस तरह उस पर मरने लगी थी कि उस के लिए अपने प्रेम की पवित्रता बनाये रखना असम्भव हो गया था। एक रात (जब कि भूल से पीछे का दरवाज़ा खुला रह गया था), रूबी चुपके से उस के कमरे में चली आयी थी और उसे न चाहते हुए भी (क्यों कि बाहर बारिश होने लगी थी) अपने को रूबी की इच्छा पर छोड़ देना पड़ा था। उस के बाद जितने दिन रूबी वहाँ रही, दरवाज़ा खुला रहने की भूल दोहरायी जाती रही।

रूबी बीच-बीच में उस से एक-एक दो-दो रुपये उधार ले लेती थी और उस के सिकन्दराबाद जाने तक कपूर की डायरी में उस के नाम चौदह रुपये हो गये थे। वह जाते हुए कह गयी थी कि सिकन्दराबाद पहुँचते ही अपने बैंक से निकलवा कर भेज देगी, पर दो महीने होने को आये थे और उस ने रुपये भेजना तो दूर, अपने किसी पत्र में उस कर्ज़ का ज़िक्र तक नहीं किया था। महीना-भर पहले उस ने लिखा था कि वह उस के लिए दो बेड-कवर काढ़ कर भेज रही है, मगर बाद के पत्रों में उन का भी ज़िक्र नहीं था। अब कपूर चाहता

था कि उसे ऐसा पत्र लिखा जाये जिस में [illegible] की बात आ भी जाये और स्त्री को यह मालूम भी न हो कि पत्र में यह बात लिखी है क्यों कि वह सीधे-सीधे इसे खोल कर अपने प्रेम-सम्बन्ध पर आँच नहीं आने देना चाहता था।

"बताइए, यह सब किस तरह लिखा जाये ?" सारा किस्सा सुनाने के बाद उस ने पूछा।

मैं ने उस से कहा कि, मैं इस मामले में कोई राय नहीं दे सकता। वह अपनी प्रेमिका को जानता है, इस लिए वही ठीक से सोच सकता है कि उसे क्या बात किस तरह लिखनी चाहिए। इस पर कपूर ने मेरा हाथ होले से दबा दिया और धीमे स्वर में कहा कि, मैं इतनी ऊँची आवाज में उस की प्रेमिका का जिक्र न करूँ। यहाँ के लोग दकियानूसी ख़यालातों के हैं। वे भावना की बात का भी गन्दा मतलब ले सकते हैं।

मुझे समझ नहीं आ रहा था कि उसे किस तरह टाला जाय। आखिर मैं ने उस से कहा कि इस विषय में मुझे थोड़ा सोचना होगा। इस समय मुझे कुछ अपना काम करना है, इसलिए····। इस पर वह उठता हुआ बोला, "हाँ-हाँ, आप काम कीजिए। वैसे मैं भी इस बारे में सोचूँगा। आप भी सोचिए। शाम को दोनों साथ बैठकर ड्राफ्ट बना लेंगे। मैं कल चिट्ठी जरूर पोस्ट कर देना चाहता हूँ, क्यों कि उसे अपना लुधियाना का पता भी देना है।"

और मुझ से यह अनुरोध कर के कि मुझे बाजार का कोई काम हो तो शौकत से करा लूँ, तकल्लुफ़ में न रहूँ, वह अपने कमरे में चला गया।

उस शाम से मैं ने खाने का प्रबन्ध पास के एक होटल में कर लिया। नाश्ता अपने कमरे में तैयार करने के लिए आवश्यक सामान भी खरीद लाया। कपूर को इस का पता चला, तो पहले दिन तो उस ने आ कर शिकायत की कि मैं उस की चीजों को अपनी चीजें क्यों नहीं समझता और यूँ ही इतने पैसे क्यों बरबाद कर आया हूँ। मगर दूसरे दिन से वह मेरे कमरे में आ-आ कर ऐसे-ऐसे करतब करने लगा, "आप की अलमारी में डबल रोटी रखी है, जरा मक्खन का डिब्बा तो निकालिए, दो स्लाइस काट कर खा लूँ, अब इस वक़्त रोटी कौन बनाये!" या "आज दाढ़ में दर्द है, कुछ खाया नहीं जायेगा। सोचता हूँ थोड़ा-सा दूध पी लेना ही ठीक रहेगा। मैं ने तो मँगवाया नहीं,

"पर, आखिर बात क्या है ?" कहता हुआ वह अन्दर आ गया। "इस का मतलब है कि मेरा उस दिन का अन्दाजा ठीक था। आप जरूर किसी वजह से मुझ से नाराज हैं। आप जब तक वजह नहीं बतायेंगे, मैं यहाँ से नही जाऊँगा।"

मैं बिना कुछ कहे और बिना उस की तरफ देखे अपने सामने की पुस्तक पर आँखें जमाये रहा। वह कुछ देर चुपचाप खड़ा रहा। फिर बोला, "यह कहानियों की किताब है ?"

मैं इस पर भी चुप रहा।

"आप के पास कहानियों की और भी कोई अच्छी-सी किताब है ?"

मैं फिर भी चुप रहा।

"आप के पास और कोई ऐसी किताब नहीं है ?"

मैं ने अब भी कोई जवाब नही दिया।

"अच्छा सुबह तक आप अपनी नाराजगी दूर कर लीजिए, ऐसे मेरा मन नहीं लगता," कह कर उस ने एक नजर कमरे मे चारों तरफ डाली, फिर धीरे-धीरे बाहर को चल दिया। फिर जैसे कुछ याद हो आने से जेब में हाथ डाल कर टटोलता हुआ बोला, "यह मैं लाया था। अपने लिये ले रहा था, तो सोचा भाई साहब के लिए भी एक लेता चलूँ। जरूरत तो पड़ती ही रहती है," और उस ने जेब से एक माचिस की डिबिया निकाल कर मेरी मेज पर रख दी।

"इसे ले जाइए, मुझे इस की जरूरत नहीं है," मैं ने कहा।

"शुक्र है, बोले तो सही।" कहता हुआ वह फिर आ कर मेरे सामने खड़ा हो गया। उस का कहने का ढंग ऐसा था कि मेरे लिए अपनी मुसकराहट को रोक पाना असम्भव हो गया।

"शुक्र है, मुसकराये तो सही।" वह दोनों हाथ हवा में झटक कर बोला। "उस तरह नाराज बने रहते, तो मुझे रात-भर नींद न आती। यह डिबिया तो मैं इस खयाल से ले आया था कि शायद आप को जरूरत हो। जरूरत नहीं है, तो उधर काम आ जायेगी," कहते हुए उस ने डिबिया उठा ली। फिर कमरे से बाहर जाते हुए उस ने कहा कि मेरे मन में अब भी कोई बात हो, तो उसे मैं मन से

"वह इस बारे में क्या कहता है ?"

"कहता है लुधियाना पहुँचते ही भेज दूँगा।"

उस ने यह भी बतलाया कि जिन दिनों रूबी कपूर के पास आया करती थी, उन्हीं दिनों कपूर ने उस से ये रुपये लिये थे। कहा था कि रूबी को ज़रूरत है, कि उस के बाकी रुपये व्यापारियों से आठ-दस दिन में मिलेंगे, कि यह उस के प्रेम का सवाल है, और कि वही उस का एक ऐसा दोस्त है जिस से वह माँग सकता है। धनंजय की बातों से लगा कि कपूर ने रूबी से उस की दोस्ती कराने का भी वादा किया था, पर वह वादा उस ने पूरा नहीं किया। कपूर ने उस से यह भी कह रखा था कि मैं उस का पुराना दोस्त हूँ और कि मेरे वहाँ रहते उसे अपने रुपये की चिन्ता बिलकुल नहीं करनी चाहिए। मैंने धनंजय को अपनी स्थिति समझायी, तो उस का चेहरा उतर गया। गीली रेत से बच कर चलने का उसे ध्यान नहीं रहा। वह मुरझाये हुए स्वर में बोला, "देखिए, मैं रुपये की उतनी परवाह नहीं करता। पर उसे मेरे-जैसे भले आदमी के साथ इस तरह का सलूक करना नहीं चाहिए।"

मैं उस की बात पर मन-ही-मन मुसकरा दिया। अपने से ज़्यादा मुझे उस से हमदर्दी हुई। यह इसलिए भी कि कुछ क़दम चलते-चलते एक जगह फिसल कर उस ने कपड़े खराब कर लिये।

समुद्र-तट से लौट कर मैं ने बटलर के हाथ कपूर के पास चिट भेज दी कि मैं कुछ दिन अकेले में काम करना चाहता हूँ, इस लिए उस की मेहरबानी होगी अगर वह इस के बाद मेरे कमरे में आने की तकलीफ़ न करे। मगर थोड़ी ही देर में शौकत ने आ कर कहा कि साहब उधर बुला रहे हैं। मैं ने शौकत को वापस भेज दिया और चुपचाप अपना काम करता रहा। कुछ देर बाद कपूर, खुद चला आया और दरवाज़े के पास रुककर बोला, "भाई साहब, आप ने लिखा है मैं आप के कमरे में न आया करूँ। पर आप को मेरे कमरे में आने में तो कोई एतराज़ नहीं है न ?"

मुझे बहुत गुस्सा आ रहा था। मैं ने खिझलाये स्वर में उस से कहा कि, "मैं अपने काम के वक़्त किसी की उस तरह की दखल-अन्दाज़ी पसन्द नहीं करता, इस लिए उस वक़्त उस से बात नहीं कर सकता।"

"पर, आख़िर बात क्या है ?" कहता हुआ वह अन्दर आ गया। "इस का मतलब है कि मेरा उस दिन का अन्दाज़ा ठीक था। आप ज़रूर किसी वजह से मुझ से नाराज़ हैं। आप जब तक वजह नहीं बतायेंगे, मैं यहाँ से नहीं जाऊँगा।"

मैं बिना कुछ कहे और बिना उस की तरफ देखे अपने सामने की पुस्तक पर आँखें जमाये रहा। वह कुछ देर चुपचाप खड़ा रहा। फिर बोला, "यह कहानियों की किताब है ?"

मैं इस पर भी चुप रहा।

"आप के पास कहानियों की और भी कोई अच्छी-सी किताब है ?"

मैं फिर भी चुप रहा।

"आप के पास और कोई ऐसी किताब नहीं है ?"

मैं ने अब भी कोई जवाब नहीं दिया।

"अच्छा सुबह तक आप अपनी नाराज़गी दूर कर लीजिए, ऐसे मेरा मन नहीं लगता," कह कर उस ने एक नज़र कमरे में चारों तरफ़ डाली, फिर धीरे-धीरे बाहर को चल दिया। फिर जैसे कुछ याद हो आने से जेब में हाथ डाल कर टटोलता हुआ बोला, "यह मैं लाया था। अपने लिये ले रहा था, तो सोचा भाई साहब के लिए भी एक लेता चलूँ। ज़रूरत तो पड़ती ही रहती है," और उस ने जेब से एक माचिस की डिबिया निकाल कर मेरी मेज़ पर रख दी।

"इसे ले जाइए, मुझे इस की ज़रूरत नहीं है," मैं ने कहा।

"शुक्र है, बोले तो सही।" कहता हुआ वह फिर आ कर मेरे सामने खड़ा हो गया। उस का कहने का ढंग ऐसा था कि मेरे लिए अपनी मुसकराहट को रोक पाना असम्भव हो गया।

"शुक्र है, मुसकराये तो सही।" वह दोनों हाथ हवा में झटक कर बोला। "उस तरह नाराज़ बने रहते, तो मुझे रात-भर नींद न आती। यह डिबिया तो मैं इस ख़याल से ले आया था कि शायद आप को ज़रूरत हो। ज़रूरत नहीं है, तो उधर काम आ जायेगी," कहते हुए उस ने डिबिया उठा ली। फिर कमरे से बाहर जाते हुए उस ने कहा कि मेरे मन में अब भी कोई बात हो, तो उसे मैं

निराश हूँ, उस का मन मेरी तरफ़ से बिलकुल साफ़ है ।

तीन-चार दिन यही हाल रहा । मैं उस से बात करने से बचता । पर वह बीच-बीच में आ कर इसी तरह मेरे पास बैठ जाता और दो-चार बातें कर के, और-और कुछ हाथ न लगे, तो थोड़ी-सी पोनी ही फाँक कर चला जाता । कभी-कभी उस का यह दाँव भी चल जाता, "अच्छा, पेले की खुशबू आ रही है, देखें आगे है ।"

आखिर उस का जाने का दिन आ गया । मैं दोपहर को खाना खा कर लौटा, तो देखा उस का सामान बँध चुका है । धनंजय शौकत से सामान उठवा कर तांगे में रखवा रहा था । कपूर मुझे देखते ही बाँहें फैलाये मेरे पास आ गया । बोला, "मैं इन्तज़ार ही कर रहा था कि भाई साहब आयें, तो स्टेशन चलें ।"

मैं ने अपने कमरे का दरवाज़ा खोल कर अन्दर दाख़िल होते हुए कहा कि धूप बहुत तेज है इस लिए मैं उस के साथ स्टेशन तक नहीं चल सकूँगा । वह भी मेरे साथ ही कमरे में आ गया और मेज के पास रुक कर बोला, "ठीक है, आप को तकलीफ़ उठाने की ज़रूरत नहीं ।" फिर मेज़ पर रखी एक पुस्तक को उठा कर दोनों तरफ़ से देखते हुए उस ने कहा, "यह किताब मैं रास्ते में पढ़ने के लिए ले जा रहा हूँ । दिल्ली से आप को बुकपोस्ट से भेज दूँगा ।"

और बिना मुझे कुछ कहने का मौक़ा दिये पहले दिन की तरह फिर एक बार मुझे बाँहों में भींच कर वह दरवाज़े की तरफ़ बढ़ गया । मैं ने तब बाहर निकल कर उस से कहा कि मैं भी थोड़े दिनों में वहाँ से चला जाऊँगा, इस लिए वह पुस्तक मैं उसे नहीं ले जाने दे सकता । धनंजय और शौकत तब तक तांगे में पिछली सीट पर बैठ गये थे । वह जा कर अगली सीट पर बैठता हुआ बोला, "आप फ़िक्र न करें मैं किताब आप को बंगलोर से ही भेज दूँगा ।"

और गहरी आत्मीय भावना के साथ आँखें मूँद कर उस ने हाथ जोड़ दिये । कहा, "दास से कोई भूल-चूक हुई हो, तो माफ़ कर देना । और कभी-कभार याद कर लिया करना ।"

तब तक तांगा चल दिया ।

उस शाम धनंजय फिर मुझे होटल में मिल गया । हम फिर साथ-साथ

समुद्र-तट पर टहलने निकल गये। वहाँ बैठ कर उँगलियों से रेत पर लकीरें खींचते हुए उस ने कहा, "पता नहीं मेरे पैसे भेजता है या नहीं। वह तो गया है कि जल्दी ही भेज देगा। मैं इसी लिए उसे स्टेशन तक छोड़ने गया था कि मेरी तरफ़ से उस का दिल बिलकुल साफ़ रहे। मैं ने खुद ही उस से कह दिया है कि दस-बीस दिन में जब भी उसे सुविधा हो, भेज दे। इस तरह मैं ने सोचा कि शायद भेज भी दे। नहीं तो ऐसे आदमी का क्या पता है ?"

मैं कुहनियाँ रेत पर टिकाये लेटा उमड़ती लहरों का खेल देखता रहा। धनंजय आशापूर्ण दृष्टि से आकाश को ताकता रेत पर लकीरें खींचता रहा।

मलबार

शब्द मलबार में जो आकर्षण है, वही आकर्षण वहाँ दृश्य-विस्तार में भी है। लाल ज़मीन, घनी हरियाली और बीच-बीच में नारियल के सूखे पत्तों से बनायी गयी घरों की छतें। कनानोर में रह कर और आसपास घूम कर मुझे लगा कि वह सारा प्रदेश एक बहुत बड़ा नारियल का उद्यान है जिस में बीच-बीच में सुपारी, काजू, पान आदि जैसे दृश्य सौन्दर्य के लिए ही लगा दिये गये हैं और जिस में छोटी-छोटी नदियों और बैक-वाटर्ज़ का पानी भी उसी उद्देश्य से फैला दिया गया है। इस तरह के सौन्दर्य में घिर कर रहना अपने में एक चाह हो सकती है, पर वहाँ गरमी बहुत पड़ती है। एक वहीं के व्यक्ति ने मज़ाक में मुझ से कहा कि मलबार में साल में नौ महीने गरमी पड़ती है, और बाक़ी तीन महीने बहुत गरमी पड़ती है।

मलबार की उपजाऊ ज़मीन एक तरह से कच्चा सोना उगलती है। वहाँ की उपज को देखते हुए वहाँ के निवासियों का जीवन-स्तर काफ़ी अच्छा होना चाहिए, पर ऐसा नहीं है। प्रकृति की भरपूर देन के बीच भी दरिद्रता और

अभावपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। कन्नानोर में उनापक फ़ैक्टरी के पास के मैदान में अक्सर मज़दूरों की मीटिंगें हुआ करती थीं। मैं बोलने वालों की भाषा नहीं समझ पाता था, पर उन की ध्वनियों से भी अर्थ का बहुत-कुछ अनुमान लगाया जा सकता था। उन दिनों किसी फ़ैक्टरी में हड़ताल चल रही थी। समस्या वही थी जो हुआ करती है। बाज़ार मन्दा होने के कारण मालिक लोग मज़दूरों का वेतन घटाना चाहते थे, और ऐसा न होने पर फ़ैक्टरी बन्द करने की धमकी दे रहे थे। मज़दूर अपने वेतन कम करने के लिए तैयार नहीं थे। शाम को जुलूस निकलता, उस के बाद मीटिंग होती और रात की हवा में मलयालम की मूर्धन्य ध्वनियाँ स्टेनगन की तरह गूँजती सुनाई देतीं। मैं कई बार उन ध्वनियों को सुनने के लिए ही रुक जाया करता।

वहाँ रहते कई बार सोचा करता कि कितनी साधारण चीज़ें मनुष्य के निर्माण में कितना बड़ा हाथ रखती हैं। समुद्र-तट की हवा, मछली, खोपड़े का तेल और उबले हुए चावल—इन उपकरणों से प्रकृति मलबार में जिस शरीर-सौन्दर्य की सृष्टि करती है, उसे गठन, तराश और उठान की दृष्टि से असाधारण कहा जा सकता है। पतली खाल, सुन्दर आँखें और अजन्ता की मूर्तियों जैसे होंठ—ये वहाँ के शरीर-सौन्दर्य की विशेषताएँ नहीं, सामान्यताएँ हैं। परन्तु बहुत से चेहरों पर अभाव की छाया स्पष्ट दिखाई देती है। लगता है कि प्रकृति के उस सुन्दर निर्माण में कोई मैली चीज़ हस्तक्षेप कर रही है। मलबार के पक्षी भी बहुत सुन्दर हैं—परन्व, कोच्छ, कहल काक, सभी। उन के निर्माण और विकास में किसी का हस्तक्षेप नहीं, इस लिए वे बहुत स्वस्थ भी हैं। वे धरती और वातावरण से जितना कुछ ग्रहण करना चाहते हैं, उन्मुक्त भाव से कर सकते हैं। परन्तु मनुष्यों की यह विवशता है कि वे ऐसा नहीं कर पाते।

सांस्कृतिक दृष्टि से मलबार मलयालम-भाषी केरल प्रदेश का एक अंग है। (केरल तब तक केवल एक सांस्कृतिक इकाई थी, आज की तरह राजनीतिक इकाई नहीं।) उत्तर भारत में जिस उत्साह के साथ होली और दीवाली मनायी जाती है, वहाँ उसी उत्साह के साथ ओणम् और विशु, ये दो त्योहार मनाये जाते हैं। ओणम् अगस्त-सितम्बर में पड़ता है और वर्ष का प्रमुख त्योहार माना जाता है। इस त्योहार के साथ राजा महाबली की कथा सम्बद्ध है। (उत्तर

भारत में इन्हीं महाबली को हम राजा बली के रूप में जानते हैं, जिन से, पौराणिक कथाओं के अनुसार, वामन ने तीन पैर जमीन माँगी थी और फिर सारी जमीन पर पाँव फैला कर उन्हें पाताल में भेज दिया था।) ओणम् की कथा है कि राजा महाबली के राज्य में केरल में बहुत समृद्धि थी और प्रजा बहुत सुखी थी। वामन ने राजा महाबली को केरल छोड़ कर पाताल जाने के लिए विवश कर दिया। (यह सम्भवतः उत्तर भारतीय शक्ति प्रसार का रूपक है। केरल में महाबली आदर्श राजा हैं, जब कि उत्तर के पुराण उन्हें दैत्यों का अधिपति बताते हैं।) चूँकि महाबली बहुत लोकप्रिय राजा थे और उस प्रदेश को उन्हों ने समृद्ध बनाया था, इस लिए उन्हें यह सुविधा दी गयी कि वे वर्ष में एक बार पाताल से आ कर केरल की प्रजा को आशीर्वाद दे जायें जिस से उस प्रदेश की समृद्धि यथावत् बनी रहे। ओणम् का दिन राजा महाबली के पाताल से लौट कर आने का दिन माना जाता है।

वैसे ओणम् फ़सल काटने का त्योहार है। इस अवसर पर लोग नौ दिन तक घरों के आगे फूलों से तरह-तरह की सजावट करते हैं। ओणम् के दिन घर के आँगन में महाबली की मिट्टी की मूर्ति स्थापित कर के उस की पूजा की जाती है। पप्पड़म् (पापड़) और केले से बनाये गये खाद्य-पदार्थ ओणम् के दिन के विशेष पकवान हैं।

विषु दूसरा त्योहार है जो अप्रैल-मई में पड़ता है। यह मलयालम संवत्सर के आरम्भ के दिन मेडम् मास की पहली तारीख को मनाया जाता है। उस से पहले की रात को घर के बड़े कमरे में कनी (विभिन्न व्यंजन, जिन में उबला हुआ चावल नहीं रहता) रख कर दिये जला दिये जाते हैं। सवेरे उठते ही घर के लोग कनी के दर्शन कर के पूजा आदि करते हैं।

उत्तर भारत के त्योहारों में से वहाँ महाशिवरात्रि मनायी जाती है। यह भी वहाँ के प्रमुख त्योहारों में से है। दीवाली एक सीमित वर्ग में ही मनायी जाती है। होली और वसन्त वहाँ नहीं मनाये जाते।

कन्नानोर से कालीकट आते हुए रास्ते में मैं तेल्लीचेरी स्टेशन पर उतर गया। वह एक सनक ही थी। कन्नानोर से चल देने का निश्चय अचानक ही कर लिया था। मुझे वहाँ रहते तब कुछ सप्ताह दिन हुए थे। उस दिन सुबह सो कर उठा, तो मन कुछ उचाट-सा था। लग रहा था जैसे वहाँ रहते बहुत दिन हो गये हों और अब वहाँ और रह सकना असम्भव हो। अनदेखे स्थानों का आकर्षण फिर मन पर छा गया था। आश्चर्य हो रहा था कि मैं इतने दिन भी कन्नानोर में कैसे रह गया। उस के बाद थोड़ी ही देर में सामान बँध गया और मैं कालीकट का टिकिट ले कर गाड़ी में सवार हो गया।

पीली रेत—दूर-दूर तक फैली हुई। नारियलों के घने झुण्ड और नंगी रेत। समुद्र का नीला पानी और चिकनी रेत। खिड़की से दिखाई देती वह तट की रेत इतनी आकर्षक लग रही थी कि मन हुआ उसे पास से देखने के लिए क्यों न वहीं कहीं उतर पड़ूँ? क्या पता आगे कहीं रेत उतनी पीली, उतनी चिकनी और उतनी एकान्त मिलेगी या नहीं। जब गाड़ी तेल्लीचेरी स्टेशन पर रुकी, तो मैं ने बिना ज़्यादा सोचे अपना सामान गाड़ी से उतरवा लिया।

डेढ़-दो का समय था। गाड़ी चली गयी, तो प्लेटफ़ॉर्म और पटरियों पर फैली धूप को देख कर मुझे वहाँ उतर पड़ने के लिए अफ़सोस होने लगा। पूछने पर पता चला कि उस स्टेशन पर क्लोक रूम भी नहीं है जहाँ सामान छोड़ कर घूमने जाया जा सके। मगर उतर पड़ा था, इस लिए सामान एक पोर्टर के सुपुर्द कर के हाथ जेबों में डाले स्टेशन से बाहर निकल आया। पीली रेत और उस के आकर्षण की बात तब तक भूल चुका था।

चारों तरफ़ खुली धूप फैली थी। एक रिक्शा वाले ने पास आ कर पूछा,

"जगन्नाथ गेट ?"

मैं ने उस से पूछा कि यह जगन्नाथ गेट कौन-सी जगह है ?

"वर रुपिया आर आणा," वह बोला ।

मैं ने बंगलौर में रहते मलयालम की एक से दस तक की गिनती सीख ली थी । जो उस ने कहा उस का मतलब था 'एक रुपया छह आना ।'

मैं ने इशारों से समझाने की कोशिश करते हुए उस से फिर पूछा कि जगन्नाथ गेट कौन-सी जगह है ?

"वर रुपिया नाल आणा," वह बोला । इस का मतलब था, "एक रुपया चार आना ।"

"ठीक है, चलो ।" कह कर मैं रिक्शा में बैठ गया । सोचा कि एक रुपया चार आना खर्च कर के किसी अनजान जगह पर ले जाया जाना अपने में बुरा अनुभव नहीं है ।

रिक्शा सँकरे रास्ते में से होता हुआ चलने लगा । दोनों ओर के घर छह-छह आठ-आठ फुट ऊँची ज़मीन पर बने थे । हम एक तरह से दो दीवारों के बीच बनी गली से हो कर जा रहे थे । उस धूप में भी उन गलियों में से गुज़रते हुए एक ठण्डक-सी महसूस होती थी । आख़िर एक ऐसी जगह पहुँच कर जहाँ एक ओर दुकानें थीं और दूसरी ओर खुला मैदान, रिक्शा वाले ने रिक्शा रोक दिया । मैदान की तरफ़ इशारा कर के उस ने मुझे एक पगडण्डी दिखाई और इशारे से कहा कि मैं उस पगडण्डी से आगे चला जाऊँ ।

"मगर यह पगडण्डी जाती कहाँ है ?" मैं ने भी इशारों से ही उसे अपना मतलब समझाने की कोशिश की ।

उस ने जवाब में जो इशारे किये, उन से मुझे लगा कि वह कह रहा है मैं घूम कर वहीं आ जाऊँ, वह वहीं रुक कर मेरा इन्तज़ार करेगा । आख़िर जब उसे लगा कि हम दोनों बिना एक-दूसरे की बात समझे यूँ ही फ़िज़ूल हाथ हिला रहे हैं, तो वह रिक्शा एक तरफ़ छोड़ कर चला आया और इशारे से मुझे पीछे आने को कह कर पगडण्डी पर आगे-आगे चलने लगा ।

इस तरह कुछ दूर चल कर हम जहाँ पहुँचे, वह परम शिवम् का एक मन्दिर था । पन्द्रह-बीस मिनिट मैं घूम कर मन्दिर देखता रहा । यह जान कर

कि मैं उत्तर भारत से आया हूँ, पुजारी बहुत उत्साह के साथ मन्दिर की एक-एक चीज़ मुझे दिखाता रहा। उस ने अनुरोध किया कि मैं कमीज़ और बनियान उतार कर मन्दिर को अन्दर से भी देखूँ। अन्दर घूम चुकने के बाद उस ने मुझे मन्दिर के संस्थापक स्वामी जी की मूर्ति दिखायी जो छह हज़ार रुपये में दिल्ली से बन कर आयी थी। चलने से पहले उस ने मुझे नारियल का पानी पिलाया। उसे बहुत ख़ुशी थी कि मैं मन्दिर के महत्त्व को समझ कर इतनी दूर से वहाँ आया हूँ—एक ऐसा ही दर्शनार्थी कुछ वर्ष पहले भी कहीं दूर से वहाँ आया था।

मन्दिर से लौटते हुए मेरी नज़र पगडण्डी के एक तरफ़ मिट्टी खोदते मज़दूरों पर पड़ी। कुछ पुरुष थे जो नंगे बदन, दो-गज़ी धोतियाँ ऊपर को लपेटे, मिट्टी खोद कर तसलों में भर रहे थे। कुछ स्त्रियाँ थीं जो धोतियों के साथ ब्लाऊज़ भी पहने थीं, और तसले सिरों पर उठा कर मिट्टी दूसरी तरफ़ फेंकने ले जा रही थीं। काम के साथ-साथ वे लोग आपस में चुहल भी कर रहे थे। मैं पगडण्डी पर रुक कर उन्हें काम करते देखता रहा।

उन में से एक नवयुवक ने मेरी तरफ़ देख कर मलयालम में न जाने क्या सवाल पूछा। मैं चुपचाप मुसकरा दिया, तो रिक्शा वाले ने उसे बताया, "मलयाली इल्ला।"

इस पर वे सब लोग मेरी तरफ़ देखने लगे। आपस में थोड़ी बात करने के बाद उसी नवयुवक ने मुझ से एक और सवाल पूछा।

"मालयाली इल्ला।" इस बार मैं ने कहा। इस पर वे सब हँस दिये। मैं ने उन की तरफ़ हाथ हिलाया और वहाँ से चल दिया। उन में से भी कुछ एक ने जवाब में हाथ हिलाये। अब रिक्शा वाला मुझे मलयालम में शायद उन की कही बातों का अर्थ समझाने लगा। दो-एक मिनिट बोल कर उस ने प्रश्नात्मक स्वर में बात समाप्त की और मेरी तरफ़ देखा। मैं ने सिर हिलाया कि मेरी समझ में कुछ नहीं आया। उस ने निराश भाव से हाथ झटके और हम दोनों खिलखिला कर हँस दिये।

स्टेशन के पास रिक्शा से उतर कर मैं चाय पीने सामने की एक दुकान में चला गया। बाहर बोर्ड लगा था : 'मुस्लिम होटल'। रिक्शा वाला मेरा

मेहमान था क्योंकि उसी ने उस जगह की सिफ़ारिश की थी। एक ख़ास ढंग से भाप दे कर कपड़े के मैले-से स्ट्रेनर में छानकर नये ही ढंग से बनायी गयी वह चाय जब एक मैली-सी प्याली में सामने आयी, तो मेरा पीने को मन नहीं हुआ। पर पहला घूँट भरने पर चाय का फ़्लेवर इतना अच्छा लगा कि 'सिर्फ़ एक घूँट और' भरने के लिए प्याली हाथ में लिये रहा। उस के बाद दो-तीन घूँट और भर लिये, फिर भी प्याली परे हटाते नहीं बना।

होटल की बेंचें भी प्याली से कम मैली नहीं थीं। हम्माम, काउण्टर का तख़्ता और दरवाज़ों की जालियाँ—सब पर मैल की परतें जमी थीं। दो छोटे-छोटे कमरे थे। एक जिस में बैठ कर मैं चाय पी रहा था। दूसरा उस के पीछे था। उस कमरे में भी एक मेज़ और कुछ बेंचें रखी थीं। कुछ नवयुवक काफ़ी बेतकल्लुफ़ी से वहाँ बैठे साहित्य-चर्चा कर रहे थे। मेज़ पर एक लेख के काग़ज़ बिखरे थे जो शायद उन में से किसी ने पढ़ा था। लेख को ले कर जो बहस चल रही थी, उस में से कोई-कोई शब्द मेरे पल्ले पड़ जाता था—इनसाइट, वैल्यूज़, लाइफ़ मैटर। काग़ज़ों के आस-पास रखी चाय की प्यालियाँ कब की ख़ाली हो चुकी थीं। बातचीत की गरमागरमी में कभी उन में से किसी का हाथ अपने सामने की ख़ाली प्याली को ही उठा कर होठों तक ले जाता। चुस्की लेने की कोशिश में पता चलता कि प्याली में चाय नहीं है, तो निराशा का हलका झटका महसूस कर के वह प्याली नीचे रख देता। बाहरी दरवाज़े की जाली में से सड़क का कुछ हिस्सा दिखाई दे रहा था। सड़क के परले सिर पर तीन स्त्रियाँ एक पेड़ के नीचे अपने बोरिया-बिस्तर का दायरा-सा बनाये लेटी थीं। दो बच्चे थे जिन में से एक बँधी चारपाई के पायों में से हर-एक पर बारी-बारी से हाथ रखता हुआ अपना ही कोई खेल खेल रहा था। दूसरा बच्चा, जो उम्र में थोड़ा बड़ा था, एक बछिया को धकेल कर दायरे से दूर हटाने की कोशिश कर रहा था। तभी एक स्त्री न जाने किस बात से अचानक उठ कर बैठ गयी और तीखी आवाज़ में बड़े बच्चे को कोसने लगी। बच्चा बछिया को उस की जगह पर छोड़ कर सड़क के इस पार चला आया। पर स्त्री का कोसना इस के बाद भी कुछ देर जारी रहा।

मैं ने एक-एक घूँट कर के पूरी प्याली ख़ाली कर दी थी। प्याली रख कर

[illegible] में कुछ खोजने लगा, तो देखा कि कोने की मेज़ पर चाय पीता एक आदमी एकटक मेरी तरफ़ देख रहा है। वह शायद अपने मन में मेरी गतिविधि के नोट्स ले रहा था।

'मुस्लिम होटल' से निकल कर मैं स्टेशन के वेटिंग हाल में आ गया। हाल क्या, एक कमरा-सा था जिस में एक तरफ़ बुकिंग आफ़िस था, दूसरी तरफ़ टी-स्टाल। बीच में कुछ बेंचें पड़ी थीं। ज़्यादातर बेंचों पर लोग लेटे या बैठे थे, पर आस-पास किसी का सामान नज़र नहीं आ रहा था। एक बेंच पर एक फटे कानों वाली बुढ़िया बैठी थी जो अपनी सुंघनी हाथ में मल रही थी। उस के साथ की बेंच पर एक अधेड़ मुसलमान घुटने ऊपर उठाये पैरों को आकाश में झुलाता हुआ साथ बैठे नवयुवक से कुछ बात कर रहा था। सिर्फ़ उसी बेंच पर थोड़ी-सी जगह खाली थी, इस लिए मैं भी उन के पास जा बैठा। अभी बैठ ही रहा था कि आस-पास सब लोग हँस दिये। अधेड़ मुसलमान ने कुछ बात कही थी। मैं थोड़ा अचकचा गया कि कहीं बात मुझे ले कर तो नहीं कही गयी। मेरे चेहरे से भाँप कर कि मैं ऐसा सोच रहा हूँ, साथ बैठा नवयुवक अँगरेज़ी में मुझ से बोला, "आप शायद इन की बात नहीं समझे। मैं इन से कह रहा था कि हर आदमी को तीन चीज़ें अधिकार के तौर पर मिलनी चाहिए—रोटी, कपड़ा और मकान। पर ये कह रहे हैं कि तीन नहीं चार चीज़ें मिलनी चाहिए—रोटी, कपड़ा, मकान और औरत।"

इस पर मैं भी हँस दिया।

"ये शादीशुदा नहीं है क्या?" मैं ने नवयुवक से पूछा।

नवयुवक फिर हँसा। बोला, "होते, तो ऐसी बात क्यों कहते?"

फिर वह गम्भीर हो कर अधेड़ मुसलमान से आगे बहस करने लगा। शायद उसे समझाने लगा कि क्यों औरत की गिनती उन चीज़ों में नहीं की जा सकती। मगर अधेड़ मुसलमान आखिर तक सिर हिलाता रहा। उस की एक और बात ने फिर लोगों को हँसा दिया। नवयुवक ने मेरे लिए अनुवाद किया, "कहते हैं कि औरत ही नहीं मिलेगी, तो आदमी रोटी, कपड़े और मकान का क्या करेगा? बेकार हैं सब!"

"यह जगह स्टेशन का वेटिंग हाल नहीं, एक अच्छा-खासा क्लब जान पड़ती

है," मैं ने नवयुवक से कहा।

"आप की बात ग़लत नहीं है," वह बोला। "हम लोग रोज़ दोपहर को यहीं चले आते हैं। छोटी-सी शान्त जगह है, दोपहर काटने के लिए बहुत अच्छी है। चाय, काफ़ी और खाने-पीने की दूसरी चीज़ें भी यहाँ मिल जाती हैं। एक से साढ़े चार के बीच कोई गाड़ी नहीं आती, इस लिए आदमी चाहे, तो आराम से सो भी सकता है। हवादार जगह होने से गरमियों के लिए बहुत ही अच्छी है। हम जितने लोग यहाँ आते हैं, सब के सब बेकार हैं। बेकारी का वक़्त घर बैठ कर उतनी आसानी से नहीं कटता, जितनी आसानी से यहाँ कट जाता है।"

उस के बाद मैं दो घण्टे और वहाँ रहा—गाड़ी के आने तक। गाड़ी में बैठा, तो उस नवयुवक के अलावा और भी दो-तीन लोगों ने प्लेटफ़ार्म से मुझे विदा दी। उतनी देर में मुझे भी उस बेकार-समाज की अस्थायी सदस्यता मिल गयी थी। गाड़ी आगे निकल आयी, तो भी काफ़ी देर मन से मैं तेल्लीचेरी में ही बना रहा—मन्दिर के अहाते में, उस पगडण्डी के पास जहाँ ज़मीन की खुदाई हो रही थी, मुस्लिम होटल की मैली जालियों के अन्दर और थर्ड क्लास के उस वेटिंग हाल में। लग रहा था कि जगह-जगह बिखरे ऐसे कितने छोटे-छोटे केन्द्र हैं जो परोक्ष रूप से हमारे जीवन की दिशा निर्धारित करते हैं... परन्तु उन केन्द्रों पर रहने वाले लोग स्वयं शायद फिर भी अनिर्धारित ही रह जाते हैं...कभी-कभी जीवन-भर।

काफ़ी, इनसान और कुत्ते

'ऊटी इकहत्तर मील'—सामने मील के पत्थर पर खुदे अक्षरों को मैं कई पल देखता रहा। कालीकट से कुन्देल आ कर मैं वहाँ बस से उतरा ही था। सामान कालीकट छोड़ आया था। उस समय मुझे पता नहीं था कि मैं उसी

भी सड़क पर आ रहा हूँ । अब चुन्देल पहुँच कर उस मील के पत्थर को देखते हुए मन में ऐसे लगा कि अपनी तरह से ज़रा मना जाऊँ—कुल पचहत्तर मील का ही तो सफ़र है । पर आम आदमी यहाँ आठ हज़ार फ़ुट की ऊँचाई पर और मुझ पे भी सिर्फ़ एक सूती कमीज़ । मैं ने आँखें मील के पत्थर से हटायीं और कच्चे रास्ते पर आगे चल दिया ।

उस से पहली शाम मैं ने कालीकट के समुद्र-तट पर बितायी थी । जिस समय वहाँ पहुँचा, उस समय जितने भी लोग वहाँ थे, सब के सब एक-दूसरे से दूर अलग-अलग दिशाओं में मुँह किये लेटे या बैठे थे । लगता था हर-एक को दुनिया से किसी-न-किसी बात की नाराज़गी है—या अपने अस्तित्व को ले कर कुछ ऐसी चिन्ता है जिस का समाधान उसे यहाँ से ढूँढ कर जाना है । हर आदमी ने अपना एक अलग कोण बना रखा था । एक जगह तीन आदमी कुहनियों पर सिर रखे आगे-पीछे लेटे थे—एक-दूसरे से दो-दो फ़ुट का फ़ासला छोड़ कर । उन्हों ने शायद अपनी व्यक्ति-भावना और समष्टि-भावना का समन्वय कर रखा था । लेकिन कुछ देर बाद वहाँ चहल-पहल हो गयी, तो ये सारे व्यक्तिवादी, अपने कोणों सहित, उस भीड़ में खो गये ।

कालीकट व्यापारिक नगर है । वहाँ का समुद्र-तट जहाज़ों पर माल चढ़ाने-उतारने का केन्द्र है । मुझे अपनी दृष्टि से वह समुद्र-तट ज़्यादा आकर्षक नहीं लगा, इस लिए सिर्फ़ एक रात वहाँ रह कर मैं ने आगे चल देने का निश्चय कर लिया । कालीकट से चुन्देल मैं चाय और कॉफ़ी के बागीचे देखने के लिए आया था । इस जगह की सिफ़ारिश मुझ से हुसैनी ने की थी ।

दो पत्तियाँ और एक कली—मैं कच्चे रास्ते से एक पौधे की पत्तियाँ तोड़ कर सूँघने लगा । सामने नीलगिरि का जितना विस्तार नज़र आता था, उस पर दूर तक चाय के पौधे उगे थे । कुछ दूर ऊँचाई पर चाय की फ़ैक्टरी थी । घूमता हुआ मैं फ़ैक्टरी में चला गया । चाय की हरी-हरी पत्तियों को सूँघते-सहलाते हुए जो पुलक प्राप्त हुआ था, वह फ़ैक्टरी में यह देख कर जाता रहा कि केतली तक आने से पहले वे पत्तियाँ किस बुरी तरह सुखायी, मसली, तपायी और काटी जाती हैं । मगर फ़ैक्टरी में जो ताज़ा चाय पीने को मिली, उस से यह भावुकता काफ़ी हद तक दूर हो गयी ।

फ़ैक्टरी से निकल कर फिर काफ़ी देर इधर-उधर घूमता रहा। हर तरफ़ चाय के ही बग़ीचे थे, काफ़ी का एक भी बग़ीचा नज़र नहीं आ रहा था। एक आदमी से पूछा, तो उस ने सामने की तरफ़ इशारा कर दिया। जो उस ने मुँह से कहा, वह मेरी समझ में नहीं आया। मैं चुपचाप उस के बताये रास्ते पर चल दिया। पर डेढ़-दो फ़र्लांग जाने पर एक दोराहा आ गया। मैं कुछ देर दुविधा में खड़ा रहा कि अब आगे किस रास्ते से जाऊँ। एक तरफ़ से कुछ लोगों के बात करने की आवाज़ सुनाई दे रही थी। यह सोच कर कि आगे का रास्ता उन से पूछ लिया जाये, मैं उस तरफ़ बढ़ गया। झाड़ियों से आगे वह एक खुली-सी जगह थी जहाँ नीचे कुछ मज़दूर खाद तैयार कर रहे थे। उन के और मेरे बीच कई गज़ तक खाद का फैलाव था। मैं खाद के ऊपर से होता हुआ उन के पास पहुँच गया। शब्दों और इशारों का पूरा इस्तेमाल करते हुए मैं ने उन से पूछा कि कॉफ़ी के बग़ीचे तक पहुँचने के लिए मुझे किस रास्ते से जाना चाहिए। पर वे लोग मेरी बात नहीं समझे। उन में से एक ने आगे आते हुए मुझ से पूछा, "मलयाली ?"

मैं ने सिर हिलाया—नहीं।

"तामिल ?"

मैं ने फिर सिर हिला दिया।

"हिन्दुस्तानी ?"

"हाँ," मैं ने कहा। "हिन्दुस्तानी।"

"क्या पूछता है, बोलो।" वह अब बहुत पास आ गया।

"मैं जानना चाहता हूँ कि उधर जो दो रास्ते हैं, उन में से कॉफ़ी के बग़ीचे का रास्ता कौन-सा है ?"

"इधर कॉफ़ी का कोई बग़ीचा नहीं है," वह बोला। "तुम को किस ने इधर भेजा ?"

मैं ने उसे बता दिया मैं कैसे एक आदमी से रास्ता पूछ कर उधर आया हूँ।

वह मुसकराया। बोला, "उस ने समझा तुम कॉफ़ी पीने का जगह पूछता है। इधर आगे जाने से कॉफ़ी पीने का होटल मिलेगा। कॉफ़ी का बग़ीचा

[illegible] में भाग कर तुम्हें दिखा देता।"

[illegible] हंसने लगा, जो जल्द ने अपने साथियों [illegible]। फिर मुझ से बोला, "अच्छा आओ, मैं [illegible]

[illegible] होता हुआ आगे-आगे चलने लगा। मैं भी [illegible] देर रुका और पत्थरों पर पैर जमा कर अपना [illegible] के पीछे-पीछे चलने लगा। मोड़ से आगे एक पगडंडी [illegible] पहुँच गये। वहाँ आ कर उस ने पूछा, "तुम इधर

[illegible]—घूमने के लिए," मैं ने कहा।

"[illegible] घूमने के लिए?" उस की आँखों में हलकी चमक आ गयी। "[illegible]-कौन-सा जगह देख लिया?"

मैं ने संक्षेप में उसे बता दिया कि गोआ से यहाँ तक मैं किस-किस जगह हो कर आया हूँ।

"घूमने में बड़ा मजा है," वह बोला। "मैं भी बहुत घूमा है। बर्मा, सिंगापुर, ईरान, कलकत्ता, दिल्ली, पंजाब—सब जगह देख आया है। मैं पहले फ़ौज में था। फ़ौज में ही मैं हिन्दुस्तानी सीखा है। थोड़ा-थोड़ा पंजाबी भी सीखा है। की गल्ल ए ओए कुत्ते दिया पुत्तरा!" और वह खिलखिला कर हँस दिया।

नीलगिरि की ऊपरी चोटियों से बादल के बड़े-बड़े सफ़ेद टुकड़े इस तरह हमारी तरफ़ आ रहे थे जैसे कोई थोड़ी-थोड़ी देर बाद उन्हें एक-एक कर के गुब्बारों की तरह हवा में छोड़ रहा हो। उन के सायों से घाटी में धूप और छाँह की शतरंज-सी बन रही थी। हमारे रास्ते में कुछ क्षण धूप रहती, फिर छाया आ जाती। सड़क हलके बलखाती हुई लगातार नीचे को उतर रही थी।

मैं चलते हुए उस से उस के बारे में पूछता रहा। उस का नाम गोविन्दन् था। फ़ौज में वह अस्थायी तौर से भरती हुआ था। कई जगह की लड़ाइयाँ उस ने देखी थीं। पर लड़ाई के बाद पहले रिट्रेंचमेण्ट में ही उस की वह नौकरी

समाप्त हो गयी थी। लड़ाई से पहले भी वह मजदूरी करता था, अब लौट कर फिर वही काम कर रहा था। दिन में मज़दूरी के एक रुपया पाँच आने मिलते थे जिन से वह अपने चार व्यक्तियों के परिवार का गुजारा चलाता था।

"दो हफ्ता हुआ चाय-फैक्टरीका मज़दूर लोग फैक्टरी के मैनेजर को पकड़ लिया था," उस ने बताया।

"क्यों ?"

"उन लोग का माँगें मैनेजर ने नहीं माना था। बहुत गड़बड़ हुआ। पुलिस भी आया।"

"फिर ?"

"अभी तो मामला चलता है। मज़दूर लोग का माँग मैनेजर को मानना पड़ेगा। नहीं मानेगा, तो मज़दूर लोग काम नहीं करेगा।"

हम लोग एक मोड़ पर आ गये थे। वहाँ रुक कर गोविन्दन् ने थोड़ी दूर आगे इशारा करते हुए कहा, "कॉफी का एक बगीचा उधर है। मुझे जा कर काम करता है, नहीं तो मैं तुम्हारे साथ चलता।...पर कोई बात नहीं। मैं तुम्हें वहाँ तक छोड़ आता है।"

"तुम रहने दो," मैं ने कहा। "तुम्हारे काम का हर्ज होगा। वह सामने ही तो है, मैं चला जाऊँगा।"

"हर्ज क्या होगा ?" वह चलता हुआ बोला। "मैं अपने हिस्से का काम जा के पूरा करेगा।" और वह मुझे फैक्टरी के बारे में, वहाँ की उपज के बारे में और मज़दूरों की जिन्दगी के बारे में कई और बातें बतलाने लगा। एक जगह उस ने मुझे एक खट्टे फल का पेड़ दिखाया और बताया कि वे लोग उस फल के साथ मछली पका कर खाते हैं। फिर एक पेड़ के पास रुक कर उस ने कहा, "यह हिन्दुस्तान का सब से होनहार पेड़ है—इसे पहचानता है ?"

"कौन-सा पेड़ है यह ?" मैं ने पूछा।

"काजू का—जो हर साल कितना-कितना डालर कमाता है।"

"पेड़ मैंने रास्ते में भी देखा है," मैं ने कहा। "पर इस में काजू कहाँ लगे हैं ?"

"अभी मौसम का शुरू है, अभी इस में फल नहीं निकला। मौसम में

इस में मीठा-मीठा खास-खास फल लगेगा। कुछ मौसम की तरफ़ फल नहीं जाता, जिस से फल लगता है। इस फल के साथ एक दाना उगता है।...ठहरो, वह एक पक गया है। मैं अभी तुम को उतार कर देता है।"

वह पेड़ पर चढ़ गया। फल पेड़ की सब से ऊँची टहनी पर था। पक्की शाख पर खड़े होकर उस का हाथ फल तक नहीं पहुँचा। उस ने एक पैर कच्ची शाख पर रख दिया, फिर भी हाथ नहीं पहुँचा।

"रहने दो," मैं ने कहा। "शाख टूट जायेगी।"

"तुम कितना दूर से आया है," वह बोला। "मैं एक पैर और नहीं चढ़ सकता?" उस ने दूसरा पैर भी कच्ची शाख पर रख दिया। डाल बुरी तरह लचक गयी, मगर उस ने फल तोड़ कर नीचे फेंक दिया। मैं ने फल उठा लिया। उस मरोड़ने से भीतर लगा दाना अलग हो गया। उसे जेब में रख कर मैं फल खाने लगा।

गोविन्दन् नीचे उतर आया, तो मैं ने उस से पूछा, "मौसम में यह फल यहाँ खूब खाया जाता है?"

"खाया भी जाता है और फेंका भी जाता है," वह बोला। "पहले इस का शराब बनता था, पर अब शराब निकालने का मना है। निकालने वाला अब भी निकालता है, पर बहुत-सा फल ऐसे ही जाता है। आजाद मुल्क में ऐसा-ऐसा चीज का कौन परवाह करता है?"

हम कॉफ़ी के बगीचे में पहुँच गये। ढलानों पर कॉफ़ी के पेड़ों के साथ-साथ नारंगियाँ और काली मिर्चें लगायी गयी थीं। कई-एक स्त्री-पुरुष कॉफ़ी के लाल-लाल बेर टोकरियों में जमा कर रहे थे। कहीं पहले के तोड़े बेर सूख रहे थे, कहीं ताजा बेर सूखने के लिए फैलाये जा रहे थे। गोविन्दन् ने बताया कि चार-पाँच दिनों में जब बेर सूख कर काले पड़ जाते हैं, तो वहाँ से क्योरिंग के लिए भेज दिये जाते हैं। यह भी बताया कि उस जमीन में पानी देने की जरूरत नहीं पड़ती। वह अपने अन्दर के पानी से ही पौधों को हरा रखती है।

तभी ऊपर की तरफ़ से कुछ कुत्तों के जोर-जोर से भौंकने की आवाज सुनाई देने लगी। एक मजदूर लड़की दौड़ती हुई उधर से आयी और ऊपर की तरफ़ इशारा कर के उस ने गोविन्दन् से कुछ कहा। ... ने मुझे बताया

कि मालिक ने ऊपर से उस लड़की को यह पूछने के लिए भेजा है कि मैं कौन हूँ और बिना इजाज़त उस की ज़मीन पर क्यों आया हूँ। फिर आवाज़ ज़रा धीमी कर के वह बोला, "वह डरता है कि उस दिन जिस तरह मजदूर लोग चाय-फ़ैक्टरी का मैनेजर को पकड़ लिया, उसी तरह इस को भी न पकड़ ले। सोचता है तुम शायद मज़दूरों के बीच प्रोपेगेण्डा करने के वास्ते आया है। इस आदमी के पास यहाँ तीन-चार सौ एकड़ ज़मीन है। हर साल एक-एक एकड़ से इस को चार-चार पाँच-पाँच हज़ार रुपये की आमदनी होती है।"

कुत्ते भौंकते हुए हमारी तरफ़ उतर रहे थे। उन का गोरा मालिक डण्डा हाथ में लिये उन के पीछे पीछे आ रहा था। गोविन्दन् ने अपनी भाषा में लड़की से कुछ कहा, फिर मुझ से बोला, "आओ, चलें। यहाँ ठहरने में ख़तरा है। इस आदमी का कुत्ता बहुत ज़बरदस्त है।"

लड़की डरी-सी लौट गयी। कुत्ते अब काफ़ी नीचे आ कर भौंक रहे थे। हम लोग वापस चलने लगे, तो गोविन्दन् बोला, "देखो, कितना बड़ा-बड़ा कुत्ता है और कैसे भौंकता है! ऐसे आदमी को आदमी की मदद का तो भरोसा नहीं है न। ख़ाली कुत्ते का ही भरोसा है।" अपनी इस बात से ख़ुश हो कर वह हँसा। बात उस ने ऐसे ढंग से कही थी कि मुझे भी हँसी आ गयी।

"अकेला आदमी है," गोविन्दन् कहता रहा। "न बीवी है, न बच्चा है। दोस्त-यार, सगा-सम्बन्धी, जो कुछ है, यह कुत्ता ही है।"

कुत्ते उसी तरह भौंक रहे थे। मालिक उन से काफ़ी पीछे खड़ा डण्डा हिलाता हुआ हमें लौटते देख रहा था।

हम लोग ऊपर सड़क पर पहुँच गये, तो गोविन्दन् बोला, "पता नहीं किस तरह यह आदमी अपनी ज़िन्दगी काटता है। दिन-भर करने को कुछ होता नहीं। ख़ाली कमरे में बैठा रहता है, या डण्डा और कुत्ता लिये घूमता रहता है। जब यह मर कर परमात्मा के घर जायेगा, तब भी डण्डा और कुत्ता साथ-वाला के लिए साथ लेता जायेगा। पर पता नहीं कुत्ता वहाँ इस के साथ जाने को तैयार होगा या नहीं।" इस बात पर हम दोनों फिर हँस दिये।

हम लोग लौट कर वहाँ पहुँच गये थे जहाँ से गोविन्दन् मेरे साथ चला था। उसे धन्यवाद दे कर मैं उस से विदा लेने लगा, तो नीचे काम करते अपने

साथियों को आवाज़ दे कर उस ने उन से कुछ कहा और मुझ से बोला, "मैं तुम्हारे साथ बस को सड़क तक चलता हूं। काम जो मेरे हिस्से का रहा है, मैं आ के पूरा करूंगा।" और वह फिर मेरे साथ आगे चल दिया।

बस यात्रा की साँझ

पुन्देल से कालीकट के रास्ते में....।

बस एक छोटी-सी बस्ती के बाज़ार में रुकी थी। एक तरफ़ तीन-चार दुकानें थीं, दूसरी तरफ़ पत्थरों की मुंडेर। नीचे घाटी थी। सभी लोग बस से उतर कर वहां चाय-कॉफ़ी पीने लगे। सिर्फ़ एक इकन्नी में काफ़ी का बड़ा-सा गिलास पी कर मैं दुकान से सड़क पर आया, तो देखा कि दिन का रंग सहसा बदल गया है। लग रहा था—जैसे आंधी आने वाली हो। पहाड़ पर आंधी नहीं आती, इस लिए आश्चर्य भी हुआ। पर असल में आंधी-वांधी कुछ नहीं थी—अस्त होते सूर्य के आगे बादल का एक टुकड़ा आ गया था।

च्चिव-च्वीयु !....च्चित्र-च्वीयु—एक पक्षी लगातार बोल रहा था। मुझे लगा जैसे बार-बार वह मुझ से कुछ कह रहा हो। मन हुआ कि उसी की भाषा में मैं भी उसे उत्तर दूं। कहूं, "च्चिव-च्वीयु दोस्त, च्चित्र-च्वीयु ! कहो, क्या हालचाल हैं तुम्हारे ?"

मैं टहलता हुआ मुंडेर के पास चला गया और नीचे घाटी की तरफ़ देखने लगा। एक युवती तीन-चार गौओं को हांकती ऊपर सड़क की तरफ़ आ रही थी। जिस वेश में वह थी, उस में मैं ने कालीकट से आते हुए कई स्त्रियों को देखा था—दूधिया सफ़ेद तहमद, उतनी ही सफ़ेद चोली और वैसा ही सफ़ेद पटका। पटका बांधने का उन का अपना खास ढंग है। गज़-भर कपड़े का टुकड़ा ले कर एक तरफ़ के सिरों को वे सिर के पीछे गांठ दे लेती हैं और दूसरी तरफ़ के

सिरों को धुन्धा छोड़ देती है। कम्पट नवयुवतियों के इस वेश को देख कर चित्रों में देखी मिस्र की रमणियों की याद हो आती है। परन्तु इस वेश की सादगी एक अतिरिक्त विशेषता है जो उस तुलना में नहीं रखी जा सकती।

युवती गौओं के साथ सड़क पर पहुँच गयी और सीधी सधी हुई चाल से आगे चलती गयी। मेरा ध्यान तब आस-पास मँडराती तितलियों में उलझ गया। सब एक ही तरह की तितलियाँ थीं—हरा शरीर और उस पर स्याह रंग के उभरे हुए दायरे। उन से थोड़ी दूर कुछ और तितलियाँ थीं—गहरा मटियाला रंग और सफेद बार्डर के पंख। वे सब जमीन से दो-एक फुट की ऊँचाई पर ही उड़ रही थीं—जैसे कि उस से ऊँचा उड़ पाना उन के परों के लिए भारी पड़ता हो।

ड्राइवर ने हॉर्न दे दिया। मैं ड्राइवर के साथ की अपनी सीट पर जा बैठा। सूर्यास्त के बाद आकाश का रंग इस तरह बदल रहा था कि एक-एक क्षण में होने वाले परिवर्तन को लक्ष्य किया जा सकता था। वह पक्षी उसी तरह बोल रहा था—च्चि-च्वीयु! च्चि-च्वीयु! बस चल दी। मैं खिड़की से झाँक कर देखने लगा। पक्षी की आवाज़ पीछे रहती जा रही थी। आगे घनी हरियाली में वृक्षों के नये सुर्ख पत्ते ऐसे लग रहे थे जैसे जगह-जगह सुर्ख फूलों के गुच्छे लटक रहे हों। एक मोड़ के बाद हम पहाड़ी के उस हिस्से में आ गये जहाँ बस डेढ़-दो हज़ार फुट की सीधी ऊँचाई से चक्कर काटती हुई नीचे उतरती है। वहाँ से ज़मीन छोटी-छोटी नदियों, टीलों और हरियाली के द्वीपों का समूह नज़र आती है। ज्यों-ज्यों बस नीचे उतर रही थी, उस दृश्य के फैलाव पर अँधेरा घिरता जा रहा था। लग रहा था जैसे उजाले की दुनिया से हम लोग नीचे अँधेरे की दुनिया में उतर रहे हों।

जब तक हम नीचे पहुँचे, अँधेरा पूरी तरह घिर आया था। पर न जाने क्यों मुझे लग रहा था कि वह पक्षी अपनी झाड़ी में बैठा अब भी लगातार उसी तरह बोल रहा होगा—च्चि-च्वीयु! च्चि-च्वीयु! मेरा मन अपने अन्दर की किसी अनुभूति से उदास होने लगा। वह अनुभूति अपने एक आत्मीय को किसी अनजान बस्ती में रात को अकेला छोड़ आने-जैसी थी—बावजूद इस के कि वह लगातार मुझे पीछे से पुकारता रहा था—च्चि-च्वीयु! च्चि-च्वीयु!

था। [illegible] यही अवसर की याद में मनाया जाता है। उन दिनों मन्दिर के [illegible] की ओर आसपास का घना जंगल था। जिस व्यक्ति को मृत्यु-दण्ड [illegible], उसे उस जंगल में छोड़ दिया जाता था और जंगली जानवर उसे फाड़ खाते थे। राम वर्मा ने अपने विवाह के अवसर पर वह जंगल कटवा दिया था। तब से त्रिचुर के लोगों में उन का मान बहुत बढ़ गया था।

बातें करते हुए हम लोग वापस श्रीधरन् के घर पहुँच गये। वहाँ आ कर [illegible] लिये। श्रीधरन् ने अनुरोध किया कि जाने से पहले मैं काफ़ी की एक प्याली पी लूँ। उस के चेहरे के भाव और हाथों के हिलने से कुछ घबराहट और उतावला झलक रही थी। वह मुझे बता चुका था कि त्रिचुर के बाहर का मैं पहला व्यक्ति हूँ जो उन के यहाँ अतिथि के रूप में आया हूँ। मुझे बाहर के कमरे में छोड़ कर वह काफ़ी लाने के लिए अन्दर चला गया। मैं उस बीच कमरे के फ़र्श और दीवारों पर नज़र दौड़ाता रहा।

मन्दिर जाने से पहले श्रीधरन् ने जो कुछ बताया था, उस से मैं जान चुका था कि वह अपनी माँ के साथ घर में अकेला रहता है। उम्र पैंतीस की हो चुकी थी, फिर भी उस ने ब्याह नहीं किया था। आगे भी उस का ज़िन्दगी-भर ब्याह करने का विचार नहीं था। वह बहुत छोटा था जब उस के पिता का देहान्त हो गया था। बीच में कई बार छोड़ कर अट्ठाईस साल की उम्र में उस ने मुश्किल से बी० ए० की पढ़ाई पूरी की थी। माँ धार्मिक विचारों की थीं—घर के काम-काज से जितना समय बचता, सारा पूजा-पाठ में बिताती थीं। श्रीधरन् पर शुरू से ही माँ का बहुत प्रभाव था। इस लिए बी० ए० करते ही उस ने धार्मिक संस्था की यह नौकरी कर ली थी। दूसरी किसी नौकरी की बात उस ने सोची ही नहीं थी। यहाँ उसे कुल पैंतीस रुपया महीना मिलता था। त्रिचुर के बाहर सवा सौ की एक नौकरी मिल रही थी, पर वह त्रिचुर छोड़ कर जाने की कल्पना भी नहीं कर सकता था। आज तक सिर्फ़, एक बार वह त्रिचुर से बाहर गया था—कालीकट। पर वहाँ से लौटने पर उसे कई दिन बुख़ार आता रहा। माँ का विश्वास था कि भगवान् वडक्कुनाथन् की सेवा से दूर जाने के कारण ही ऐसा हुआ है। स्वयं श्रीधरन् को भी इस बात का पूरा विश्वास था। माँ स्वयं घर से मन्दिर की सड़क को छोड़ कर जीवन-भर त्रिचुर की ओर किसी सड़क

तक

घर भी नहीं गयो थी। सिर्फ़ एक बार श्रीधरन् माँ को एक धार्मिक चित्र दिखाने ले गया था। उस रात माँ ने एक बहुत बुरा सपना देखा और निश्चय कर लिया कि भविष्य में अपने निश्चित रास्ते को छोड़ कर और किसी रास्ते पर कभी नहीं जायेंगी। श्रीधरन् को गर्व था कि उन के घर का वातावरण बहुत शान्त है—और घरों की तरह कलह-क्लेश की ध्वनियाँ वहाँ की शान्ति को भंग नहीं करतीं। माँ को और उसे इस शान्ति का इतना अभ्यास था कि वे ऐसे किसी परिवर्तन के लिए तैयार नहीं थे जिस से वह वातावरण बदल जाय। श्रीधरन् के ब्याह न करने का भी यही कारण था। माँ उस के इस जितेन्द्रिय संकल्प से सन्तुष्ट थीं। सोचती थीं कि आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन कर के लड़का अपना परलोक सुधार रहा है। आगे चल कर असुविधा न हो, इस लिए एक समय का चौका-बरतन श्रीधरन् अपने हाथ से करता था।

फ़र्श इस तरह चमक रहा था कि धूल का एक ज़र्रा भी हो, तो साफ़ नज़र आ जाये। श्रीधरन् ने बताया था कि माँ बड़ी मेहनत से हर रोज़ पूरे घर की सफ़ाई करती हैं। यूँ घर काफ़ी खस्ता हालत में था और दीवारों में जगह-जगह दरारें पड़ी थीं। घर में कुल तीन कमरे थे। एक आगे का जिस में मैं बैठा था। उस से पीछे का कमरा रसोई का था। तीसरा कमरा जिसे मैं नहीं देख सका, रसोई से पीछे था और वहाँ काफ़ी अँधेरा था। माँ उसी कमरे में रहती थी और वहीं उन्हों ने एक छोटा-सा मन्दिर भी बना रखा था। घर के आँगन में घर का अपना कुँआ था जिस पर मन्दिर जाने से पहले मैं नहाया था। घर से निकलने पर पहले घर की ही एक छोटी-सी गली थी जिस के साथ पाँच फ़ुट की दीवार उठी हुई थी। इस गली के सिरे पर एक छोटा-सा दरवाज़ा था जो बाहर की गली में खुलता था। उस दरवाज़े को बन्द कर देने से वह घर बाहर की दुनिया से बिलकुल कट जाता था। अन्दर की गली में, घर की सीढ़ियों के पास, एक बड़ा-सा पीपल का पेड़ था जिस की सूखी पत्तियाँ टूट-टूट कर खिड़की के रास्ते अन्दर के चमकते फ़र्श पर आ गिरती थीं। घर की ख़ामोशी में पत्तियों के फ़र्श पर घिसटने का शब्द ऐसे लगता था जैसे कोई अपने नाख़ूनों से उस एकान्त को छील रहा हो।

श्रीधरन् कॉफ़ी की दो प्यालियाँ एक थाली में लिये हुए अन्दर से आ गया।

साथियों की आवाज़
तुम्हारे साथ अब दं
था कि पूरा करेगा।

बस यात्रा की

चुन्देल से का
बस एक
दुकानें थीं,
उतर कर द
गिलास पी
बदल गया
नहीं आती
थी—अ
चि
जैसे वा
मैं भी
हैं तुम

लगा
थी।
देख
पट
के

स्वर ऐसा था जैसे मेरे लिए कुछ करने की जगह वह मुझ से अपने लिए कुछ करने को कह रहा हो।

"मुझे आपत्ति क्यों होगी ?" मैं ने कहा। "मैं तो बल्कि आप का आभार मानूँगा कि मुझे बिना मन्दिर देखे नहीं लौट जाना पड़ा।"

"तो चलिए," वह बोला। "मैं ब्राह्मण हूँ, इस लिए आपत्ति की कोई बात भी नहीं है ? मैं ने केवल इस लिए पूछा था कि आप को धोती बाँधने में अड़चन न हो। मेरे लिए तो यह खुशी की बात है कि मैं आप का इतना-सा काम कर सकूँ। आप इतनी दूर से आये हैं....।"

घण्टा-भर बाद धोती बाँधे और कन्धे पर अँगोछा रखे मैं ने मन्दिर के पश्चिमी गोपुरम् से उस के साथ अन्दर प्रवेश किया। तब तक मैं उस के विषय में थोड़ा-बहुत जान चुका था। उस का नाम 'श्रीधरन्' था। वह वहाँ की एक धार्मिक संस्था में काम करता था। उस दिन इतवार होने से उसे छुट्टी थी।

मैं काफी देर उस के साथ मन्दिर में घूमता रहा। वहाँ उस दिन मेरा कुछ नये देवताओं से परिचय हुआ। परम शिव, विघ्नेश्वर, पार्वती, शंकर-नारायण, राम और गोपाल-कृष्ण—ये सब परिचित देवता थे। नये देवता थे सिंहोदर (जिसे शिव-गण का मुखिया माना जाता है), धर्मशास्ता अय्यप्पा (जिसे शिव और मोहिनी-रूप विष्णु के संयोग से उत्पन्न माना जाता है, और जो भक्तों की नयी पीढ़ी का प्रिय देवता है) और वलि (जिस के सम्बन्ध में पुजारियों का विश्वास है कि वह दिन-प्रति-दिन आकार में बड़ा हो रहा है)।

देवताओं का परिचय देने के बाद श्रीधरन् मुझे कूत्तम्बलम् में ले गया। यह वहाँ की नाट्यशाला थी जहाँ पौराणिक गाथाओं का अभिनय के साथ सस्वर पाठ किया जाता है। वहाँ से लौटते हुए वह मुझे मन्दिर के प्रधान उत्सव त्रिचूरपूरम् के विषय में बताने लगा। त्रिचूरपूरम् हर साल अप्रैल के महीने में पड़ता है। उस रात मन्दिर के बाहर तेक्किनकाड मैदान में हजारों रुपये की आतिशबाज़ी चलायी जाती है। जिन दिनों ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ कोचिन का सम्बन्ध स्थापित हुआ, उन दिनों वहाँ राजा राम वर्मा का राज्य था। राम वर्मा को लोग शक्तन् तम्पुरान् (योग्य शासक) के नाम से भी जानते हैं। राम वर्मा ने त्रिचूर के एक अभिजात नायर परिवार की कन्या के साथ विवाह किया

कालीकट से अर्णाकुलम् जाते हुए मैं रास्ते में त्रिचुर उतर गया—वडक्कुनाथन् का मन्दिर देखने के लिए। मन्दिर के पश्चिमी गोपुरम् के बाहर बने विशाल स्तम्भ के पास रुक कर मैं कई क्षण उस की भव्यता को मुग्ध आँखों से देखता रहा। फिर वहाँ से हट कर अन्दर को चला, तो पूजा कर के लौटते एक युवक ने मुझे रोक दिया। ध्यान से मुझे देखते हुए कहा, "आप मन्दिर में जाना चाहते हैं?"

मैं ने चिढ़े हुए भाव से उस की तरफ़ देखा और सिर हिला दिया।

"परन्तु इस वेश में आप अन्दर नहीं जा सकते," वह बोला। "अन्दर जाने के लिए आवश्यक है कि आप उचित वेश में हों—जिस वेश में इस समय मैं हूँ।"

वह दो गज की दक्षिणी धोती तहमद की तरह बाँधे था और कन्धे पर गज-भर का टुकड़ा अँगोछे की तरह लिये था। गले में कुछ भी नहीं था। मुझे लगा कि मुझे बिना मन्दिर देखे ही लौट जाना होगा क्यों कि न तो वे कपड़े मेरे पास थे, न ही मैं ख़रीद कर पहनने का तरद्दुद कर सकता था। मैं वहाँ से लौटने को हुआ, तो उस युवक ने पूछ लिया, "आप कहाँ से आये हैं?"

"आज कालीकट से आ रहा हूँ," मैं ने कहा। "वैसे पंजाब से आया हूँ।"

"इतनी दूर से? बहुत दूर से आये हैं आप!" वह बात बहुत कोमल ढंग से कर रहा था। चेहरे से भी बहुत सौम्य जान पड़ता था। "आप मन्दिर देखना चाहते हैं, तो एक काम हो सकता है," वह सहानुभूति के साथ बोला। "मेरा घर यहाँ से दूर नहीं है। आप को आपत्ति न हो, तो मैं वहाँ चल कर आप को धोती और अँगोछा दे सकता हूँ। आप को आपत्ति तो नहीं होगी न?" उस का

स्वर ऐसा था जैसे मेरे लिए कुछ करने की जगह वह मुझ से अपने लिए कुछ करने को कह रहा हो।

"मुझे आपत्ति क्यों होगी ?" मैं ने कहा। "मैं तो बल्कि आप का आभार मानूँगा कि मुझे बिना मन्दिर देखे नहीं लौट जाना पड़ा।"

"तो चलिए," वह बोला। "मैं ब्राह्मण हूँ, इस लिए आपत्ति की कोई बात भी नहीं है ? मैं ने केवल इस लिए पूछा था कि आप को धोती बाँधने में अड़चन न हो। मेरे लिए तो यह खुशी की बात है कि मैं आप का इतना-सा काम कर सकूँ। आप इतनी दूर से आये हैं....।"

घण्टा-भर बाद धोती बाँधे और कन्धे पर अँगोछा रखे मैं ने मन्दिर के पश्चिमी गोपुरम् से उस के साथ अन्दर प्रवेश किया। तब तक मैं उस के विषय में थोड़ा-बहुत जान चुका था। उस का नाम 'श्रीधरन्' था। वह वहाँ की एक धार्मिक संस्था में काम करता था। उस दिन इतवार होने से उसे छुट्टी थी।

मैं काफी देर उस के साथ मन्दिर में घूमता रहा। वहाँ उस दिन मेरा कुछ नये देवताओं से परिचय हुआ। परम शिव, विघ्नेश्वर, पार्वती, शंकर-नारायण, राम और गोपाल-कृष्ण—ये सब परिचित देवता थे। नये देवता थे सिद्धोदर (जिसे शिव-गण का मुखिया माना जाता है), धर्मशास्ता अय्यप्पा (जिसे शिव और मोहिनी-रूप विष्णु के संयोग से उत्पन्न माना जाता है, और जो भक्तों की नयी पीढ़ी का प्रिय देवता है) और कलि (जिस के सम्बन्ध में पुजारियों का विश्वास है कि वह दिन-प्रति-दिन आकार में बड़ा हो रहा है)।

देवताओं का परिचय देने के बाद श्रीधरन् मुझे कूत्ताम्बलम् में ले गया। यह वहाँ की नाट्यशाला थी जहाँ पौराणिक गाथाओं का अभिनय के साथ सस्वर पाठ किया जाता है। वहाँ से लौटते हुए वह मुझे मन्दिर के प्रधान उत्सव त्रिचुरपूरम् के विषय में बताने लगा। त्रिचुरपूरम् हर साल अप्रैल के महीने में पड़ता है। उस रात मन्दिर के बाहर थाक्किनकाड मैदान में हज़ारों रुपये की आतिशबाज़ी चलायी जाती है। जिन दिनों ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ कोचिन का सम्बन्ध स्थापित हुआ, उन दिनों वहाँ राजा राम वर्मा का राज्य था। राम वर्मा को लोग शक्तन् तम्पूरन् (योग्य शासक) के नाम से भी जानते हैं। राम वर्मा ने त्रिचुर के एक अभिजात नायर परिवार की कन्या के साथ विवाह किया

था। त्रिचूरपूरम् उसी अवसर की याद में मनाया जाता है। उन दिनों मन्दिर के दक्षिण की ओर सागवान का घना जंगल था। जिस व्यक्ति को मृत्यु-दण्ड दिया जाना होता, उसे उस जंगल में भेज दिया जाता था और जंगली जानवर वहीं उसे खा जाते थे। राम वर्मा ने अपने विवाह के अवसर पर वह जंगल कटवा दिया था जिस से त्रिचुर के लोगों में उस का मान बहुत बढ़ गया था।

बात करते हुए हम लोग वापस श्रीधरन् के घर पहुँच गये। वहाँ आ कर मैं ने कपड़े बदल लिये। श्रीधरन् ने अनुरोध किया कि जाने से पहले मैं काफ़ी की एक प्याली पी लूँ। उन के चेहरे के भाव और हाथों के हिलने से कुछ घबराहट और उत्तेजना झलक रही थी। वह मुझे बता चुका था कि त्रिचुर के बाहर का मैं पहला व्यक्ति हूँ जो उन के यहाँ अतिथि के रूप में आया हूँ। मुझे बाहर के कमरे में छोड़ कर वह काफ़ी लाने के लिए अन्दर चला गया। मैं उस बीच कमरे के फ़र्श और दीवारों पर नजर दौड़ाता रहा।

मन्दिर जाने से पहले श्रीधरन् ने जो कुछ बताया था, उस से मैं जान चुका था कि वह अपनी माँ के साथ घर में अकेला रहता है। उम्र पैंतीस की हो चुकी थी, फिर भी उस ने ब्याह नहीं किया था। आगे भी उस का जिन्दगी-भर ब्याह करने का विचार नहीं था। वह बहुत छोटा था जब उस के पिता का देहान्त हो गया था। बीच में कई बार छोड़ कर अट्ठाईस साल की उम्र में उस ने मुश्किल से बी० ए० की पढ़ाई पूरी की थी। माँ धार्मिक विचारों की थीं—घर के काम-काज से जितना समय बचता, सारा पूजा-पाठ में बिताती थीं। श्रीधरन् पर शुरू से ही माँ का बहुत प्रभाव था। इस लिए बी० ए० करते ही उस ने धार्मिक संस्था की यह नौकरी कर ली थी। दूसरी किसी नौकरी की बात उस ने सोची ही नहीं थी। यहाँ उसे कुल पैंतीस रुपया महीना मिलता था। त्रिचुर के बाहर सवा सौ की एक नौकरी मिल रही थी, पर वह त्रिचुर छोड़ कर जाने की कल्पना भी नहीं कर सकता था। आज तक सिर्फ़ एक बार वह त्रिचुर से बाहर गया था—कालीकट। पर वहाँ से लौटने पर उसे कई दिन बुखार आता रहा। माँ का विश्वास था कि भगवान् वडक्कुनाथन् की सेवा से दूर जाने के कारण ही ऐसा हुआ है। स्वयं श्रीधरन् को भी इस बात का पूरा विश्वास था। माँ स्वयं घर से मन्दिर की सड़क को छोड़ कर जीवन-भर त्रिचुर की ओर किसी सड़क

घर भी नहीं गयी थी। सिर्फ़ एक बार श्रीधरन् माँ को एक धार्मिक चित्र दिखाने ले गया था। उस रात माँ ने एक बहुत बुरा सपना देखा और निश्चय कर लिया कि भविष्य में अपने निश्चित रास्ते को छोड़ कर और किसी रास्ते पर कभी नहीं जायेंगी। श्रीधरन् को गर्व था कि उन के घर का वातावरण बहुत शान्त है—और घरों की तरह कलह-क्लेश की ध्वनियाँ यहाँ की शान्ति को भंग नहीं करतीं। माँ को और उसे इस शान्ति का इतना अभ्यास था कि वे ऐसे किसी परिवर्तन के लिए तैयार नहीं थे जिस से यह वातावरण बदल जाय। श्रीधरन् के ब्याह न करने का भी यही कारण था। माँ उस के इस जितेन्द्रिय संकल्प से सन्तुष्ट थीं। सोचती थीं कि आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन कर के लड़का अपना परलोक सुधार रहा है। आगे चल कर असुविधा न हो, इस लिए एक समय का चौका-बरतन श्रीधरन् अपने हाथ से करता था।

फ़र्श इस तरह चमक रहा था कि धूल का एक ज़र्रा भी हो, तो साफ़ नज़र आ जाये। श्रीधरन् ने बताया था कि माँ बड़ी मेहनत से हर रोज़ पूरे घर की सफ़ाई करती हैं। यूँ घर काफ़ी ख़स्ता हालत में था और दीवारों में जगह-जगह दरारें पड़ी थीं। घर में कुल तीन कमरे थे। एक आगे का जिस में मैं बैठा था। उस से पीछे का कमरा रसोई का था। तीसरा कमरा जिसे मैं नहीं देख सका, रसोई से पीछे था और वहाँ काफ़ी अँधेरा था। माँ उसी कमरे में रहती थीं और वहीं उन्हों ने एक छोटा-सा मन्दिर भी बना रखा था। घर के आँगन में घर का अपना कुँआ था जिस पर मन्दिर जाने से पहले मैं नहाया था। घर से निकलने पर पहले घर की ही एक छोटी-सी गली थी जिस के साथ पाँच फुट की दीवार उठी हुई थी। इस गली के सिरे पर एक छोटा-सा दरवाज़ा था जो बाहर की गली में खुलता था। उस दरवाज़े को बन्द कर देने से वह घर बाहर की दुनिया से बिलकुल कट जाता था। अन्दर की गली में, घर की सीढ़ियों के पास, एक बड़ा-सा पीपल का पेड़ था जिस की सूखी पत्तियाँ टूट-टूट कर खिड़की के रास्ते अन्दर के चमकते फ़र्श पर आ गिरती थीं। घर की ख़ामोशी में पत्तियों के फ़र्श पर घिसटने का शब्द ऐसे लगता था जैसे कोई अपने नाख़ूनों से उस एकान्त को छील रहा हो।

श्रीधरन् कॉफ़ी की दो प्यालियाँ एक थाली में लिये हुए अन्दर से आ गया।

उस के चेहरे पर उत्तेजना और घबराहट पहले से बढ़ गयी थी। प्यालियाँ वह तिपाई पर रखने लगा, तो मैं ने देखा कि उस का हाथ भी ज़रा-ज़रा काँप रहा है। उस ने एक प्याली मुझे दी और दूसरी प्याली अपने लिए उठाता हुआ प्रयत्न के साथ मुसकराया। परन्तु वह मुसकराहट मुसकराहट नहीं, अपने अन्दर के किसी आवेग को रोकने की कोशिश थी। कुछ देर चुपचाप कॉफ़ी पीते रहे। फिर मैं ने उस से पूछ लिया कि वह अपना छुट्टी का दिन किस तरह बिताता है।

"मन्दिर से लौट कर मैं माँ को भगवद्गीता का पाठ सुनाता हूँ," वह किसी तरह अपनी घबराहट पर क़ाबू पाने की चेष्टा करता बोला। "उस के बाद··· रामकृष्ण आश्रम के स्वामी जी के पास चला जाता हूँ। वहाँ से आ कर···आ कर माँ को उन का प्रवचन सुनाता हूँ। फिर खाना खा कर कुछ देर स्वाध्याय करता हूँ। सायंकाल फिर मन्दिर में चला जाता हूँ। मन्दिर से लौटने तक खाना बनाने का समय हो जाता है। मैं ने आप को बताया था न कि रात का खाना मैं अपने हाथ से बनाता हूँ।"

"हमेशा यह एक ही तरह का कार्यक्रम रहने से कभी आप का मन नहीं ऊबता?" मेरे मुँह से ये शब्द निकलते-न-निकलते श्रीधरन् का चेहरा पीला, फिर स्याह पड़ गया। उस ने जल्दी से एक नज़र अन्दर की तरफ़ देख लिया, फिर दबे स्वर में कहा, "देखिए, ऐसी बात आप को नहीं कहनी चाहिए। माँ अँगरेज़ी नहीं समझतीं—नहीं तो यह बात सुन कर उन्हें बहुत दुःख होता।"

मुझे अफ़सोस हुआ कि मैं ने ऐसी बात क्यों पूछ ली। मैं ने क्षमा माँगते हुए उस से कहा कि मैं केवल जानकारी के लिए पूछ रहा था—किसी तरह की आलोचना करना मेरा उद्देश्य नहीं था।

"आप को ऐसा लग सकता है," श्रीधरन् काँपते स्वर में बोला। "परन्तु हमारे लिए इस से सुखकर जीवन का कोई रूप हो ही नहीं सकता। आप बाहर के आदमी हैं, इस लिए आप···आप शायद इस चीज़ को नहीं समझ सकते।" फिर एक बार अन्दर की तरफ़ नज़र डाल कर अटकते स्वर में उस ने कहा, "हमें तो लगता है कि धर्म-चर्चा के लिए अब भी हमें बहुत कम समय मिल पाता है। आदमी कितना कुछ और कर सकता है—पर बहुत-सा समय घर के कामों

में व्यर्थ चला जाता है।"

सहसा बहुत ही अव्यवस्थित हो कर वह उठ खड़ा हुआ और बड़े-बड़े पग उठाता अन्दर चला गया। मैं कॉफ़ी पी चुका था। प्याली रख कर मैं दीवार पर लगे चित्रों को देखने लगा। धर्मशास्ता अय्यप्पा और नटराज नायर-परिवार की सुन्दरी। राजा राम वर्मा और ईस्ट इण्डिया कम्पनी का कप्तान। रामकृष्ण मिशन के स्वामी जी। श्रीधरन् की माँ। रामेश्वर का मन्दिर…।

श्रीधरन् लौट आया। उस का चेहरा अब और भी बेजान हो रहा था। मैं उस के आते ही उठ खड़ा हुआ। उसे धन्यवाद देते हुए मैं ने कहा कि मैं अब वहाँ से चलना चाहूँगा। "चलने से पहले एक बार अन्दर जा कर माँ को भी धन्यवाद दे दूँ…।"

"चलना चाहेंगे आप?" श्रीधरन् बहुत आकस्मिक ढंग से बोला। "तो आइए मैं आप को बाहर दरवाज़े तक छोड़ दूँ।"

"हाँ, बस एक बार अन्दर माँ से मिल लूँ…।"

"नहीं नहीं," श्रीधरन् जैसे किसी संकट में पड़ कर हाथ झाड़ता बोला। "माँ की तबीयत ठीक नहीं है। सिर में दर्द है—शायद थोड़ा बुख़ार भी है। आप उन से…मेरा मतलब है आप अगर उन से…देखिए बुरा नहीं मानिएगा। हमारे घर का वातावरण कुछ दूसरी तरह का है। आप को शायद…शायद मैं समझा नहीं सकूँगा…।"

"अच्छा, आप मेरी तरफ़ से उन्हें धन्यवाद दे दीजिएगा," मैं ने कहा। बात कुछ-कुछ मेरी समझ में आ रही थी। श्रीधरन् की आँखें डरी-डरी-सी हो रही थीं। लग रहा था जैसे वह अपने एक अपराध को सामने मूर्त-रूप में देख रहा हो। मेरा वहाँ आना शायद उस घर के जीवन की तीसरी मनहूस घटना थी। "मुझे दुःख है कि उन का स्वास्थ्य ठीक नहीं है। वे स्वस्थ होतीं, तो मैं अवश्य उन से मिल कर जाता।"

मैं हाथ जोड़ कर चलने को हुआ, तो श्रीधरन् बोला, "मैं आप के साथ दरवाज़े तक चल रहा हूँ। बुरा नहीं मानिएगा। इस घर में बाहर का आदमी पहले कभी नहीं आया। इसीलिए…इसलिए शायद माँ…।" और वह जैसे अपनी ही बात में उलझ कर चुप कर गया।

[illegible]

[illegible]

एर्नाकुलम, कोचीन।

कोचीन के बन्दरगाह से लौटते हुए गेट के पास आ कर मैं रुक गया और इमारत को देखने के लिए रुक गया। वहाँ जो लड़के खेल रहे थे, उनमें से एक ने पूछने पर बताया कि उस जगह का नाम मट्टानचेरी [illegible] है—डि हालैंड का पुराना पैलेस।

मैंने पैलेस देखने की इच्छा प्रकट की, तो लड़का भागता हुआ चौकीदार को बुलाने चला गया। दो मिनट बाद आ कर बोला, "इन सीढ़ियों से ऊपर चले जाइए। चौकीदार अन्दर से दरवाज़ा खोल रहा है।"

मैं ऊपर चला गया। चौकीदार ने दरवाज़ा खोल दिया था। मेरे ड्योढ़ी में पहुँचने पर उस ने गम्भीर भाव से दीवार पर लगे बोर्ड की तरफ़ इशारा कर दिया। ख़ुद आँखें नीची किये दरवाज़े के पास खड़ा रहा।

मैं ने बोर्ड पर पढ़ा कि वह महल डच काल में बना था और कि वहाँ के कुछ कमरों की दीवारों पर बने चित्र उस काल की कला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। एक कमरे के रामायण म्यूरेल का विशेष उल्लेख था।

मैं पढ़ चुका, तो चौकीदार उँगली में चाबी लटकाये चुपचाप आगे-आगे चल दिया। पहले वह मुझे जिस कमरे में ले गया, उस की दीवारों पर शिव-पार्वती, अर्द्ध-नारीश्वर और लक्ष्मी-पार्वती के चित्र बने थे। अर्द्ध-नारीश्वर के चित्र में मुझे रंगों की योजना बहुत आकर्षक लगी। मैं कुछ देर रुक कर उस

चित्र को देखता रहा। चित्र से आँखें हटाते हुए मुझे लगा कि चौकीदार बहुत ध्यान से मेरे चेहरे को देख रहा है। मुझ से आँखें मिलने पर वह कुछ कहने को हुआ, पर चुप रह गया। मैं उस के बाद कुछ देर एक और चित्र के पास रुका रहा। वहाँ से हटने लगा, तो फिर देखा कि चौकीदार उसी तरह मुझे ताक रहा है। इस बार वह साहस करके थोड़ा पास आ गया और बोला, 'इस चित्र में देखने को बहुत कुछ है—विशेष रूप से चेहरे का भाव और उँगलियों की स्थिति। यह कथाकलि की मुद्रा है।"

मैंने अब आश्चर्य के साथ उस की तरफ़ देखा। बात उस ने साफ़ अँगरेज़ी में कही थी—जो निःसन्देह रटी हुई भाषा नहीं थी। मैं और कुछ देर रुक कर उस चित्र को देखता रहा। देखते हुए लगा कि पहली बार सचमुच मैं उस की वह विशेषता लक्ष्य नहीं कर पाया था। इस बार मेरी आँखें चौकीदार की तरफ़ मुड़ीं, तो वह थोड़ा दूर खड़ा था और आँखें झुकाये कोने की तरफ़ देख रहा था।

वहाँ से निकल कर हम नीचे के एक कमरे में चले गये। वहाँ मटियाली सफ़ेद पृष्ठभूमि पर भूरी लकीरों से बने चित्र थे। विषय था पार्वती-विवाह। दीवार के एक कोने से शुरू करके बीच के हिस्से तक अरुन्धती और सप्तर्षियों का शिव से प्रार्थना करना कि असुर-विनाश के लिए वे विवाह कर लें तथा विवाह के लिए शिव का सज्जित हो कर आना। शेष हिस्से में पार्वती के यहाँ विवाह की तैयारी तथा विवाह। कुछ जगह सफ़ेदी करने वालों ने चित्रों पर अपनी कूँचियाँ चला दी थीं। उस ओर संकेत करके चौकीदार ने कहा, "किसी भले आदमी को ये दीवारें मैली नज़र आती थीं। उस ने इन्हें सफ़ेद करने की कोशिश की है।"

मैं ने फिर उस की तरफ़ देख लिया। यह भी लोगों को प्रभावित करने के लिए रटी गयी टिप्पणी नहीं हो सकती थी।

"कब की बात है यह?" मैंने पूछा।

उस ने मुँह में कुछ कहा जो मेरी समझ में नहीं आया। शायद इस का उत्तर उसे मालूम नहीं था।

"तुम कब से काम कर रहे हो यहाँ?" मैं ने इस लिए पूछा कि शायद

यह बात उस के यहाँ नौकरी करने से पहले की हो।

"मैं यहीं पैदा हुआ था," वह बोला। "यहीं पीछे हमारा घर है।"

मैं ने उस से और नहीं पूछा। वह वहाँ से मुझे साथ के एक और कमरे में ले गया। वहाँ की दीवारों पर शिव-मोहिनी से ले कर पशु-पक्षियों तक के रति-समय के चित्र थे। वह वहाँ गोवर्द्धन पर्वत के चित्र की ओर संकेत करके बोला, "देखिए, इस में पशु-पक्षियों के जीवन का कितना सूक्ष्म अध्ययन है।"

चित्र में सचमुच पर्वत-जीवन का बहुत सूक्ष्म और विस्तृत अध्ययन था, हालाँकि एक विसंगति भी उस में थी। चित्रकार ने ब्रज के गोवर्द्धन पर्वत पर शेर और हरिण भी एकत्रित कर दिये थे। कुछ चित्रों में—विशेष रूप से कृष्ण-गोपी-विहार के चित्रों में—आँखों के वासनात्मक भाव का बहुत सुन्दर चित्रण था।

अन्त में हम उस कमरे में पहुँचे जहाँ रामायण-म्यूरेल बने थे। कमरे के एक कोने में दिया जल रहा था। उस से कमरे का धुँधला वातावरण हलके-हलके काँपता महसूस होता था। चित्रों के रंगों में वहाँ अधिक निखार और स्पष्टता थी। मैं कमरे का पूरा चक्कर काट कर एक दीवार के पास रुका, तो चौकीदार ने पीछे से कहा, "इन चित्रों को इतना पास से मत देखिए। थोड़ा पीछे हट कर देखेंगे, तभी आप को इन की वास्तविक सुन्दरता का पता चल सकेगा।"

हर बार बात कह चुकने पर उस की आँखें दूसरी तरफ़ हट जाती थीं और निचला होंठ क्षण-भर काँपता रहता था। "लगता है तुम चौकीदार ही नहीं, चित्रकला के पारखी भी हो," मैं ने हलके से उस के कन्धे पर हाथ रख कर कहा। "यहाँ के सब चित्रों को लगता है तुम ने बहुत ध्यान से देख रखा है।"

उस की आँखें पल-भर मेरी आँखों से मिली रहीं। फिर पहले से ज्यादा झुक गयीं। "मैं भी एक चित्रकार हूँ," उस ने मुश्किल से सुनाई देते स्वर में कहा।

मैं ने थोड़ा चौंक कर उसे देखा। खाकी निक्कर और बाहर निकली खाकी कमीज पहने छोटे क़द और दुबले शरीर का वह चौकीदार एक चित्रकार था।

"तुम्हारा नाम क्या है?" मैं ने पूछा। मेरी आँखें उस के फटे पैरों, बाँहों और टाँगों की रूखी चमड़ी और सूखे-मुरझाये होंठों को देखती रहीं।

"भास्कर कुरुप," उस ने कहा। "मैं कोचिन स्कूल ऑव आर्ट में शिक्षा ले रहा हूँ।"

"तुम आर्ट स्कूल में शिक्षा ले रहे हो और साथ यह काम भी करते हो?"

इस पर उस ने बताया कि पैलेस का चौकीदार वह नहीं, उस का पिता है। इन दिनों वह छुट्टी पर गया है, इस लिए उसे अपनी जगह ड्यूटी पर छोड़ गया है। जब वह आर्ट स्कूल जाता है, तब उस की जगह उस का भाई रामन ड्यूटी पर रहता है। यह वही लड़का था जिस से मैं ने उस जगह के बारे में पूछा था।

बात करते हुए हम वापस ड्योढ़ी में आ गये। मैं ने भास्कर से पूछा कि उस की ड्यूटी का अभी कितना समय बाक़ी है। उस ने बताया कि ड्यूटी का समय घण्टा-भर पहले पूरा हो चुका है—इसी लिए मेरे आने तक दरवाज़ा बन्द हो चुका था। मैं ने उस से कहा कि वह अगर खाली है, तो हम कहीं चल कर साथ चाय पी सकते हैं।

भास्कर ने दरवाज़ा बन्द किया और मेरे साथ नीचे आ गया। वहाँ से हम ने उस के छोटे भाई रामन को भी साथ ले लिया और पास ही एक चाय की दुकान में चले गये। वहाँ बात करते हुए मुझे भास्कर से पता चला कि उस की उम्र कुल बाईस साल है, हालाँ कि अपनी घनी मूँछों और चेहरे की गहरी लकीरों के कारण वह तीस-बत्तीस से कम का नहीं लगता था। वह पहले हाई स्कूल तक पढ़ा था। स्कूल से निकलने के बाद उस ने दो-एक जगह नौकरी की, पर किसी भी नौकरी में उस का मन नहीं लगा। उसे बचपन से ही चित्र बनाने का शौक़ था। चाहता था किसी तरह अपने इस शौक़ को आगे बढ़ा सके। पिता आर्ट स्कूल की फ़ीस नहीं जुटा सकते थे, फिर भी किसी तरह वे वहाँ दाखिल कराने के लिए राज़ी हो गये थे। वह पूरी कोशिश करता था कि उस की पढ़ाई का बोझ पिता पर न पड़े। इस लिए अवकाश के समय मज़दूरी भी कर लेता था। मगर यह उस का निश्चित संकल्प था कि जैसे भी हो, वहाँ का अपना कोर्स ज़रूर पूरा करेगा।

स्वाभाविक रूप से मेरी यह इच्छा हो रही थी कि उस की बनायी हुई चीज़ें देखी जायें। मैं ने उस से कहा कि इस के लिए वहाँ से उठ कर मैं उस के घर चलूँगा।

इस से भास्कर थोड़ा कुण्ठित हो गया। अपने नाख़ूनों को देखता बोला, "मैं अभी विद्यार्थी हूँ। सीख रहा हूँ। घर पर थोड़े से ख़ाके रखे हैं……पर उन में ख़ास कुछ नहीं है।"

"ख़ास न सही," मैं ने कहा। "पर जो कुछ है, उसे दिखाने में तो तुम्हें एतराज़ नहीं?"

"नहीं, एतराज़ नहीं है मुझे," वह बोला। "पर देखने को कुछ ख़ास नहीं है। आप अगर देखना ही चाहते हैं, तो मैं…रामन को भेज कर कुछ ख़ाके यहीं मँगवा लेता हूँ।"

उस के भाव से मुझे लगा कि ख़ाके दिखाने में शायद उसे उतना एतराज़ नहीं है, जितना मुझे साथ घर ले जाने में।

रामन जा कर जल्दी ही लौट आया। भास्कर ने उस के आते ही सब ख़ाके उस के हाथ से ले लिये और बहुत संकोच के साथ एक-एक कर के मुझे दिखाने लगा। उस के विषय सीमित थे—फिर भी यह स्पष्ट था कि वह काफ़ी मेहनत और लगन से काम कर रहा है। एक बड़ा-सा फ़्रेम उस ने शुरू से ही अलग रख दिया था। और सब ख़ाके देख चुकने के बाद मैं ने उस से कहा, "वह फ़्रेम नहीं दिखाया तुम ने।"

"वह…विघ्नेश्वर का चित्र है," भास्कर अब और भी संकोच के साथ बोला। "वह मेरा पहला बड़ा चित्र है। परन्तु धार्मिक है, इस लिए…।"

उस ने वह फ़्रेम उठा कर मेरे सामने कर दिया। और चित्रों की तुलना में वह चित्र काफ़ी साधारण था। जब तक मैं उसे देखता रहा, भास्कर एकटक मेरी आँखों मे कुछ पढ़ने का प्रयत्न करता रहा। मैं ने फ़्रेम उसे लौटाया, तो उस की आँखें अपने स्वभाव के अनुसार नीचे झुक गयीं।

"मैं धार्मिक चित्र नहीं बनाता," उस ने जैसे सफ़ाई देते हुए कहा, "आज तक यही एक ऐसा चित्र मैं ने बनाया है। यह मेरा पहला बड़ा चित्र था और मैं ने सोचा कि…शुरुआत के लिए…यही ठीक होगा।"

कहते-कहते उस का चेहरा थोड़ा सुर्ख़ हो गया—अपनी आस्तिकता के अपराध-भाव से। मैं उस के दूसरे ख़ाकों को फिर और एक बार देखने लगा।

चाय पी चुकने के बाद भी हम लोग कुछ देर बात करते रहे। मैं ने रामन

से उस के बारे में पूछा, तो वह बहुत उत्साह से अपनी पढ़ाई-लिखाई का ब्योरा मुझे देने लगा। उस बीच भास्कर अपनी कापी से एक कागज़ फाड़कर उस पर पेंसिल से कुछ लिखता रहा।

हम लोग चाय की दुकान से बाहर निकले, तो साँझ गहरी हो चुकी थी। पानी के उस तरफ़ अर्णाकुलम् के बुलेवार की बत्तियाँ जल उठीं। साथ ही दायीं तरफ़ भारतीय नौ-सेना के दो जहाज़ भी जगमगा उठे। उन्हें गणतन्त्र दिवस के उपलक्ष्य में बत्तियों से सजाया गया था। भास्कर के नंगे पैर में कोई चीज़ चुभ गयी थी। वह झुक कर उसे निकालने लगा। जब वह सीधा हुआ, तो मैं ने विदा लेने के लिए उस की तरफ़ हाथ बढ़ा दिया। भास्कर के होंठ कुछ कहने के लिए हिले, पर उस ने चुपचाप मुझ से हाथ मिलाया और वापस चल दिया। बोट जेट्टी की तरफ बढ़ते हुए मेरी नजर एक बार पीछे की तरफ गयी, तो देखा कि भास्कर कुछ कदम जा कर रुक गया है। मुझे अपनी तरफ देखते पा कर वह मुसकराया और अनिश्चित भाव से मेरी तरफ बढ़ आया। पास आ कर उस ने कागज़ का वह टुकड़ा मेरे हाथ में दे दिया जिस पर उस ने पेन्सिल से कुछ लिखा था। मैं ने खोल कर देखा। कागज़ पर उस का पता दिया हुआ था : भास्कर कृष्ण, मटनचरी पैलेस, कोचिन।

मैं ने अपनी पॉकेट-बुक से कागज़ फाड़ कर उसे अपना पता लिख दिया और फिर एक बार उस से हाथ मिला कर बोट जेट्टी की तरफ़ बढ़ आया।

यूँ ही भटकते हुए

एक भिखारिन, अपने बच्चे को छाती से सटाये, होंठ उस के गाल पर रखे, अधमुँदी आँखों से फुट-बोर्ड पर लटक कर चलती गाड़ी से नीचे उतर गयी…।

गाड़ी अगली स्टेशन पर आ कर रुक गयी।

आलवाई अर्णाकुलम् के पास ही है। किसी ने वहाँ की नदी के पानी की मुझ से बहुत प्रशंसा की थी। कहा था कि एक बार अवश्य मुझे वहाँ जाना चाहिए। मैं अपना सामान अर्णाकुलम् के होटल में छोड़ कर वहाँ चला आया था।

प्लेटफ़ार्म पर उतर कर मैं रेल की पटरी के साथ-साथ चलने लगा। नदी तक जाने के लिए मुझे यही रास्ता बताया गया था। फिर भी दो-एक जगह रुक कर मुझे लोगों से पूछना पड़ा। जिस समय नदी के किनारे पहुँचा, एक मल्लाह पार जाने के लिए सवारियों को बुला रहा था। बिना यह सोचे कि पार जा कर क्या होगा, मैं नाव में बैठ गया।

पार पहुँच कर मैं किनारे के साथ-साथ चलने लगा। नदी में पानी ज़्यादा नहीं था। किनारे के उथले पानी में कुछ जगह पशु नहा रहे थे। कुछ जगह पतली ईंटें नावों में भरी जा रही थीं। एक जगह घाट-सा बना था जहाँ कुछ लोग पानी में डुबकियाँ लगा रहे थे। सामने पुल था। पुल बहुत ऊँचा था, इस लिए उस के नीचे से गुज़रता नदी का पानी बहुत ख़ामोश और उदास नज़र आ रहा था।

मैं किनारे के साथ-साथ चलता हुआ पुल के ऊपर पहुँच गया। वहाँ से नीचे झाँकने पर वह पुल मुझे और भी ऊँचा लगा। बहाव के एक तरफ़ खुली ज़मीन पर धोबियों ने कपड़े सुखाने के लिए फैला रखे थे। सब के सब कपड़े बिलकुल सफ़ेद थे। उन की बाँहें-टाँगें इस तरह फैली थीं कि लगता था वे कपड़े नहीं मनुष्य-शरीर के तरह-तरह के व्यंग्य-चित्र हैं जो स्कूल से लौटते बच्चों ने चाक के चूरे से बना दिये हैं। मैं मन-ही-मन उन बाँहों-टाँगों को नयी-नयी व्यवस्था देता कुछ देर वहाँ खड़ा अपना मनोरंजन करता रहा।

नदी का बहुत बड़ा कैनवस मेरे सामने था। उस हिलते-बदलते कैनवस में लोग नहा रहे थे, कपड़े धो रहे थे, नावों में ईंटें ले जा रहे थे। पुल की ऊँचाई से देखते हुए लगता था कि ज़िन्दगी का वह छोटा-सा टुकड़ा, नदी के पानी के साथ, उसी की ख़ामोशी और गति लिये, चुपचाप बहा जा रहा है। मेरा मन होने लगा कि कुछ देर के लिए मैं भी उस कैनवस पर उतर जाऊँ—घाट पर कपड़े रख कर नदी के कमर तक गहरे पानी में दो डुबकियाँ लगा लूँ। मैं पुल

से नीचे चला गया और काफ़ी देर बच्चों की तरह घाट पर हाथ रखे उथले पानी में पैर चलाता रहा।

नहा कर निकला, तो मन हो रहा था किसी से बात करूँ। ठण्डे पानी ने शरीर में स्फूर्ति ला दी थी। मैं ने एक मल्लाह से बात करने की कोशिश की, मगर उस में सफलता नहीं मिली। भाषा अलग-अलग होने से बात की शुरूआत ही नहीं हो पायी। अगर मुझे कोई खास बात कहनी होती, तो इशारों से भी काम चल सकता था। मगर मेरी इच्छा उस पर मन का कोई भाव प्रकट करने की नहीं, मुँह से बोल कर कुछ कहने की थी। अपनी यात्रा में बहुत कम ऐसे अवसर आये थे जब मुझे अपना भाषा न जानना उस तरह अखरा हो। मगर उस समय इस बात से मन बहुत उदास हुआ कि मैं वहाँ अजनबी हूँ—इतने लोगों के बीच हो कर भी अकेला हूँ। इस मजबूरी से कि मैं किसी से बात ही नहीं कर सकता, इतना भी नहीं कह सकता कि पानी बहुत ठण्डा है, नहा कर मज़ा आ गया—मुझे दिनों के बाद घर से दूर होने की चुभन महसूस हुई।

धूप में जिस्म सुखा कर कपड़े पहनने तक मैं पुल के बैनवम को देखता रहा। एक ऊँचा मेहराब जो हर चीज़ को अपनी तरफ़ खींच रहा था—पानी को, नावों को, लोगों को। दो लड़के उस मेहराब के ऊपर से पानी की तरफ़ झाँक रहे थे। उन में से एक ने पानी में ढेला फेंका। उस से कुछ छींटे उड़ कर मेरे ऊपर पड़े। फिर दूसरे लड़के ने ढेला फेंका। इस बार भी उसी तरह छींटे पड़े। लड़के दो-एक मिनट यह खेलते रहे। फिर दौड़ते हुए पुल से सड़क पर चले गये। मेरे पास की कुछ ज़मीन भी छींटों से भीग गयी थी। उस से जो गन्ध उठ रही थी, वह इतनी परिचित थी कि मेरी अजनबीपन की अनुभूति कुछ हद तक दूर होने लगी। मैं ने गीली मिट्टी को पैर के नाख़ून से थोड़ा कुरेद दिया, फिर ऊपर की तरफ़ एक अनजान कच्चे रास्ते पर चल दिया।

वह रास्ता घरों के बीच से जाती एक गली-सी थी। एक घर के बरामदे में कुछ बच्चे खेल रहे थे। वहीं पास ही एक स्त्री गमले में बाजरा बीन रही थी। एक युवक फ़र्श पर टाँगें फैलाये अख़बार पढ़ रहा था। वह उस घर की अपनी दोपहर थी। मुझे अपने उस घर की याद आयी जिस में मेरे बचपन के कई साल गुज़रे थे। उस घर की अपनी ही सुबह, अपनी ही दोपहर और अपनी

की शाम ऐसी थी। सुबह स्कूल जाने की हड़बड़, दोपहर को रंगीन रोशनदानों से आती धूप की उदासी और शाम को बाहर बैठक में पिता जी के दोस्तों का जमाव। वह सुबह, दोपहर और शाम हमारे घर की संस्कृति थी। अब जिन घरों के पास से गुज़र रहा था, उन में से हर घर की भी अपनी एक अलग संस्कृति थी—रोज़मर्रा के छोटे-छोटे टुकड़ों से बनी संस्कृति जो उस घर के हर व्यक्ति के आज और कल को किसी-न-किसी रूप में निर्धारित कर रही थी—साथ उस पूरे समूह के आज और कल को जिस की व्यापक संस्कृति का निर्माण इन छोटी-छोटी संस्कृतियों के योग से होता है।

आगे खेत थे। खेतों के साथ मिट्टी की ऊँची मेड़ें बनी थीं। बरसात से उन की रक्षा के लिए उन्हें नारियल के पत्तों की चटाइयों से ढँका गया था। सामने मैदान की खुली धूप में एक मजदूर ईंटें तोड़ रहा था। पास ही तीन-चार बौनों जैसे बच्चे, जिन के सिर उन के शरीरों की तुलना में काफ़ी बड़े लगते थे, एक-दूसरे पर रोड़े फेंक रहे थे। उन से कुछ हट कर एक स्त्री अपना सूखा स्तन बच्चे के मुँह में दिये बार-बार उस के गालों की रूखी चमड़ी को चूम रही थी। यह उस परिवार की अपनी दोपहर थी—एक और छोटी-सी संस्कृति!

रात को अर्णाकुलम् में वहाँ के आम्बलम् का वार्षिकोत्सव था। उस अवसर पर आम्बलम् को चारों ओर से दीयों से सजाया गया था। अन्दर देवालय के चारों ओर की जालियाँ अपने एक-एक झरोखे में टिमटिमाते दीयों की रोशनी में मोम की बनी-सी लग रही थीं। देवालय के सामने का स्वर्ण-स्तम्भ, काँपती लौ के नगीनों से जड़ा, किरणों की डोरियों में गुँथा, अपने और उत्सव के महत्त्व का विज्ञापन कर रहा था। स्तम्भ के आसपास की भीड़ में कुछ देर धक्के खाने के बाद मैं आम्बलम् के पिछले भाग की ओर चला गया। उधर उस समय और ज़्यादा हलचल थी। तीन बड़े-बड़े हाथी सामने आ रहे थे। लोगों की बहुत बड़ी भीड़ उन्हें घेरे थी। हाथी सुनहरे आभूषणों से सजे थे और उन के हौदों के ऊपर भी सुनहरे छत्र लगे थे। बीच के हाथी की पीठ पर मन्दिर के देवता को लाया जा रहा था। वहाँ लोगों से पता चला कि देवता को कई दिन इसी

तरह हाथी को पीठ पर मन्दिर के चारों ओर घुमाया जाता है। वह रात आराट् की थी—अर्थात् देवता को जलस्नान कराने की। आराट् के साथ वह उत्सव समाप्त हो जाता था।

हाथियों के आगे तीन आदमी चार-चार जोतों की मशालें लिये चल रहे थे। साथ में पंचवाद्यम् था। लोगों में पंचवाद्यम् सुनने का बहुत उत्साह था। बजाने वाले भी बहुत मगन हो कर बजा रहे थे—विशेष रूप से शहनाई वाले।

रास्ते में कई घरों के आगे सजी हुई वेदिकाएँ बनी थीं। हर वेदिका के पास हाथियों को रोक कर अक्षत, चन्दन आदि से उन की पूजा की जाती। फिर बीच के हाथी को कुछ नैवेद्य दिया जाता और यात्रा आगे बढ़ जाती। ज्यों-ज्यों हाथी मन्दिर के पास पहुँच रहे थे, उन के आस-पास भीड़ बढ़ती जा रही थी। भीड़ में प्रायः सभी स्त्री-पुरुष नंगे पाँव थे। अधिकांश स्त्रियों ने बड़े ढंग से केशों में फूल सजा रखे थे। फूल सजाने को उन की अलग-अलग शैलियाँ थीं। कुछ ने अपनी साड़ी के साथ फूलों के रंग का मिलान कर रखा था, कुछ ने केशों में फूलों की अल्पनाएँ बना रखी थीं। हाथी मन्दिर की सीमा के पास आ पहुँचे, तो लोगों का उत्साह दुगुना-तिगुना बढ़ गया। ज़ोर-शोर से पटाखे चलाये जाने लगे और आतिशबाज़ी छोड़ी जाने लगी। आराट् का समय बहुत पास आ गया था।

आस पास सभी लोग किसी तरह मन्दिर के अन्दर पहुँचने के लिए संघर्ष कर रहे थे। भीड़ के उस दबाव में साँस लेना मुश्किल हो रहा था, इस लिए उलटा संघर्ष कर के मैं किसी तरह भीड़ से बाहर निकल आया। सड़क पर अब इक्का-दुक्का लोग ही थे। जो मेरी तरह भीड़ से बाहर निकल आये थे और एक तरफ़ खड़े हो कर मन्दिर से छूटती आतिशबाज़ी के रंग देख रहे थे। कुछ मज़दूर थे जो अब उन वेदिकाओं को तोड़ रहे थे जिन में थोड़ी देर पहले पूजा हुई थी। मैं भीड़ के बाहर आ कर अभी दस क़दम भी नहीं चला था कि न जाने किस अँधेरे कोने से निकल कर एक व्यक्ति मेरे सामने आ खड़ा हुआ। "मिस्टर, तुम मुझे कुछ दे सकते हो?" उस ने अँगरेज़ी में कहा।

मैं थोड़ा अचकचा कर अपनी जगह पर रुक गया। उस आदमी को मैं ने सिर से पाँव तक देखा। उस के सिर के बाल सड़ी हुई घास की तरह थे।

कई दिनों की बढ़ी हुई तिनकी दाढ़ी एक गुदगुदे बुग्गा-जैसी लग रही थी। फटी हुई कमीज़ की एक कन्नी नीचे लटक रही थी। बाँह पर फटा एक कम्बल था जिसे वह बच्चे की तरह छाती से चिपकाये था। नीचे उस ने कुछ भी नहीं पहन रखा था।

"तुम्हें क्या चाहिए ?" मैंने उस से पूछा।

"इकन्नी, दुअन्नी या जो भी तुम दे सको। मैं एक बार से ज्यादा किसी से नहीं माँगता। जिसे देना होता है, दे देता है। नहीं देना होता, नहीं देता।"

वह अच्छी अँगरेज़ी बोल रहा था। मैं ने सोचा कि कम से कम मैट्रिक तक तो वह पढ़ा ही होगा। "तुम भीख क्यों माँग रहे हो ?" मैं ने उस से कहा। "बातचीत से तो तुम खासे पढ़े-लिखे जान पड़ते हो। अँगरेज़ी इतनी अच्छी बोल लेते हो…।"

"मैं तीन भाषाएँ इतनी ही अच्छी बोल लेता हूँ," वह बोला। "अँगरेज़ी संस्कृत और तमिल।" फिर तमिल में कुछ कह कर उस ने कालिदास का एक श्लोक पूरा दोहरा दिया—"रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्…।" श्लोक पूरा करते ही उतावले स्वर में बोला, "बताओ तुम मुझे कुछ दे सकते हो या नहीं ?"

"देने में मुझे एतराज नहीं," मैं ने कहा। "पर मैं जानना चाहता हूँ कि तुम पढ़े-लिखे हो कर भी भीख क्यों माँग रहे हो ?"

उस की आँखों में एक चुभन आ गयी। "मैं बेकार हूँ और भूखा हूँ," वह वितृष्णा और कड़ुआहट के साथ बोला।

"फिर भी पढ़ा-लिखा आदमी कुछ-न-कुछ काम तो…।"

वह सहसा तिरस्कार-पूर्ण स्वर में हँसा और आगे चल दिया। उस स्वर से मुझे लगा जैसे चलते-चलते उस ने मेरे गाल पर थप्पड़ मार दिया हो।

आम्बलम् में बहुत-से पटाखे एक साथ छूटने लगे। आकाश में आतिशबाजी के कई-कई रंग बिखर गये। इस से और पंचवाद्यम् के उत्तान स्वर से मुझे लगा कि आराट् का क्षण आ पहुँचा है।

मैं ने एक बार अपने आस-पास देख लिया। वह व्यक्ति अँधेरे में न जाने कहाँ गुम हो गया था।

पानी के मोड़

अर्णाकुलम् के जिस होटल में मैं ठहरा था, उस का मैनेजर बहुत मिलनसार आदमी था। उस की मिलनसारी की वजह से बिल जहाँ जरूरत से ज्यादा बढ़ जाता था, वहाँ महसूस यही होता था कि एक दोस्त के यहाँ मेहमान बन कर ठहरे हुए हैं—और दोस्त भी ऐसा कि कह-कह कर हर चीज़ खिलाता था और बिना चाहे हर तरह का परामर्श देने लगता था।

"आज जा रहे हैं आप ?" मैं चलने के दिन नाश्ते के बाद काफ़ी पी रहा था, तो वह मेरे पास आ बैठा। उस का पूछने का ढंग ऐसा था जैसे इस के बाद उसे यही कहना हो कि नहीं, मैं आज आप को नहीं जाने दूँगा।

"हाँ, आज शाम को बोट से अलेप्पी जाने की सोच रहा हूँ ?" मैं ने कहा।

"पेरियार लेक नहीं जायेंगे ?"

मैं नहीं जानता था कि पेरियार लेक कहाँ है और उस की विशेषता क्या है। मैं ने उसे बता दिया कि न तो मुझे उस झील की कुछ जानकारी है और न ही मेरा वहाँ जाने का कार्यक्रम है।

"अरे !" वह बोला। "आप पेरियार लेक के बारे में नहीं जानते ? वह दक्षिण-पश्चिमी भारत की सब से सुन्दर झील है। दूसरी विशेषता यह है कि पहाड़ी झील है। चारों तरफ़ घना जंगल है जो हिंस्र जीवों की बहुत बड़ी सैंक्चुअरी है। आप नाव में बैठे-बैठे शेरों और चीतों को किनारे से पानी पीते देख सकते हैं। शिकार के लिए भी बहुत अच्छी जगह है। पर उस के लिए पहले इजाज़त लेनी पड़ती है।"

मैं ने काफ़ी की प्याली खाली कर के रख दी। मेरी कल्पना में पेरियार

लेक का चित्र बन रहा था—आँखों में फैला गहरे हरे रंग का पानी…पानी में उठती लहरें…एक छोटी-सी नाव…चारों तरफ घनी हरियाली…ऊँची-ऊँची पहाड़ियाँ और एकान्त निस्तब्धता।

"यहाँ से कितनी दूर है?" मैं ने पूछा।

"उस के लिए आप को यहाँ से अलेप्पी न जा कर पहले कोट्टायम् जाना होगा। कोट्टायम् से वह साठ-सत्तर मील है। बस या टैक्सी मिल जाती है। आप कहें, तो मैं यहीं से आप की सारी व्यवस्था कर देता हूँ। सौ रुपये में जाना-आना और रहना सब हो जायेगा।"

सौ में से तीस-चालीस रुपये उस ने बताया आने-जाने पर खर्च होंगे। तीस रुपये वहाँ नाव के देने होंगे। बाकी तीस-चालीस रहने-खाने और 'दूसरी सुविधाओं' पर लग जायेंगे। "ऐसी जगह आदमी का अकेले मन नहीं लगता न!" वह बोला। "इस लिए वहाँ के साथ का खर्च भी मैं ने गिन लिया है। होटल वहाँ कोई है नहीं, इस लिए रहने-खाने का सारा इन्तजाम मेरे एक अपने आदमी के यहाँ होगा। वही आप के लिए दूसरा इन्तजाम भी कर देगा…एकदम ए क्लास। आप तय नहीं कर पायेंगे कि पेरियार लेक ज्यादा खूबसूरत है या…।"

मैं मन में मुसकराया कि बनिये की आँख कितनी दूर तक जाती है। अर्णाकुलम् के होटल में बैठा वह आदमी पेरियार लेक के साथ-साथ वहाँ की किसी लड़की के सौन्दर्य का सौदा भी तय किये दे रहा था।

मैं ने उसे नहीं बताया कि उस पूरी योजना पर खर्च करने के लिए सौ रुपया मेरे बजट में नहीं है। बहुत आभार के साथ उसे उस के सुझाव के लिए धन्यवाद दे कर उठ खड़ा हुआ। कहा कि इस बार मेरे पास समय नहीं है—अगली बार जाऊँगा, तो पेरियार लेक का कार्यक्रम अवश्य रखूँगा।

"खैर जब भी जायें, जाइएगा मेरे प्रबन्ध से।" वह भी साथ उठता बोला। "मेरा कार्ड अपने पास रख लीजिए। पेरियार लेक पर मेरे-जैसी सुविधा आप को और कोई नहीं दे सकता।"

शाम को मैं ने अलेप्पी जाने के लिए फेरी ले ली। बैक-वाटर्ज़ की यात्रा का यह मेरा पहला अनुभव था। कोचिन से अलेप्पी तक बैक-वाटर्ज़ का खुला विस्तार है जो वेम्बनाद लेक के नाम से जाना जाता है। वेम्बनाद में फेरी की वह यात्रा एक रोमांचक अनुभव था। कहीं खुले पानी में इतनी बत्तखें तैरती मिलतीं कि लगता हम बत्तखों के देश में प्रवेश कर रहे हैं। सहसा फेरी का साइरन बजता और बत्तखें पानी की सतह छोड़ पंख फड़फड़ाती आकाश में उड़ जातीं। फ़ेरी के ऊपर उठते-गिरते पंखों की जाली-सी बुनी जाती। कुछ दर उड़ती रहने के बाद बत्तखें फिर पानी के किसी दूसरे हिस्से में उतर आतीं। तब दूर से देख कर लगता कि पानी पर रूई के फूलों का एक द्वीप तैर रहा है। पर कुछ ही देर में उधर से आती किसी फेरी का साइरन बज उठता और रूई के फूलों का द्वीप फिर से फड़फड़ाते पंखों में बदल कर आकाश में उड़ जाता।

अलेप्पी पहुँचने से पहले सुबह हो गयी। अब हम झील में नहीं, पानी की सड़कों पर चल रहे थे—पानी की हाइवे, सबवे, दोराहे, चौराहे। यातायात के लिए बैकवाटर्ज़ को काट कर बनायी गयी उन नहरों की सतह पर सुबह की पहली किरणों के स्पर्श से सितारे-से झिलमिला रहे थे। फेरी जहाँ किनारे के साथ-साथ छाया में चलती, वहाँ पानी में लचकते नारियलों के साये ऐसे लगते जैसे बड़े-बड़े अजगर, छटपटाते केंकड़ों को मुँह में लिये, धार से लड़ते हुए किलोल कर रहे हों। किनारे से थोड़ा हट आने पर पूरा आकाश पानी में प्रतिबिम्बित दिखाई देता और लगता कि नाव दो आकाशों के बीच से जाती धार में चल रही है। परन्तु फिर से धूप में आ पहुँचने पर नीचे का आकाश अदृश्य हो जाता और धार इकहरे आकाश के नीचे ठोस ज़मीन पर लौट आती।

शाम को अलेप्पी के समुद्र-तट पर तीन बच्चों के साथ मिल कर रेत के कासलम् बनाता रहा। जिस समय समुद्र-तट पर पहुँचा, वे बच्चे—एक लड़की, दो लड़के—पहले से वहाँ रेत के घरौंदे बना रहे थे। मैं कुछ देर रुक कर उन के हाथों का कौशल देखता रहा, फिर पैरों के भार उन के पास बैठ गया।

लड़की ने न जाने कैसे—शायद अपनी स्त्री-बुद्धि से—पहचान लिया कि मैं मलयालम-भाषी नहीं हूँ। वह अटक-अटक कर वाक्य बनाती बोली, "आप... क्या...हिन्दी-भाषी हैं?"

"हाँ," मैं ने कहा। "तुम्हें हिन्दी आती है?"

"मैं...कुछ...हिन्दी में...," और रुक कर उस ने बस्ते से अपनी हिन्दी की किताब निकाल ली। उस में देख कर बोली, "मैं...दूसरे फ़ार्म में...हिन्दी पढ़ती हूँ।"

हिन्दी में हम लोगों की बातचीत ज़्यादा नहीं चल सकी। उन लोगों को हिन्दी के थोड़े-से ही वाक्य बनाने आते थे। मगर इस के बावजूद जल्दी ही हम में घनिष्ठता हो गयी और वे मुझे रेत का आम्बलम् बनाना सिखाने लगे। जिस तरह उन्हों ने चारों तरफ़ से रेत में सुराख़ करना शुरू किया, उस से मुझे लगा कि वे एक भट्ठी बनाने जा रहे हैं। मगर धीरे-धीरे वे सुराख़ आम्बलम् के अन्दर जाने के रास्ते बन गये, रास्तों के आगे गोपुरम् खड़े हो गये और बीच में देवस्थान की स्थापना हो गयी। एक लड़के ने अपनी जेब में लाल फूल भर रखे थे। वे उस ने आम्बलम् में इधर-उधर बिखरा दिये। इस से शिल्प के अतिरिक्त आम्बलम् का वातावरण भी प्रस्तुत हो गया।

आम्बलम् बना चुकने पर उन्हों ने मुझ से कहा कि अब मैं भी वैसा ही आम्बलम् बनाऊँ। मैं ने बड़ी तत्परता से अपना निर्माण-कार्य शुरू किया। मगर जब मेरा आम्बलम् बन कर तैयार हुआ, तो वह आम्बलम् न लग कर भूतों का डेरा लग रहा था। बच्चे मेरे आम्बलम् पर काफ़ी देर हँसते रहे।

फिर हम सफ़ेद कबूतरों को पकड़ने के लिए उन का पीछा करने लगे। कबूतर कुछ ऐसे अविश्वासी थे कि हम अभी उन से बीस क़दम दूर होते और वह सारे का सारा झुण्ड उड़ कर पचास क़दम और आगे चला जाता। हम बहुत सावधानी से आगे बढ़ते हुए फिर उन से पन्द्रह-बीस क़दम पर पहुँचते, तो वे फिर उड़ कर बीच का फ़ासला उतना ही कर देते। हम शायद मील-भर उन के पीछे दौड़ते रहे। पर कबूतरों ने एक बार भी हमें अपने इतना पास नहीं पहुँचने दिया कि हम कपड़ा डाल कर उन में से किसी एक को पकड़ने की कोशिश कर सकते।

बच्चे चले गये, तो कुछ देर मैं थक कर अकेला रेत पर लेटा रहा। कन्याकुमारी की ओर जाती समुद्र की तट-रेखा दूर तक दिखाई दे रही थी। समुद्र में पानी धीरे-धीरे बढ़ रहा था। एक लहर मुझ से एक गज़ दूर तक की रेत को भिगो गयी। फिर एक और लहर मुझ से पाँच-छह इंच दूर तक आ कर लौट गयी। उस के बाद अगली लहर उस से भी दो फुट आगे तक चली आयी। मगर मैं तब तक वहाँ से उठ कर वापस चल दिया था।

अलेप्पी से मैं कोइलून आ गया। कोइलून में थंकासरी समुद्रतट के पास लाइट-हाउस है। मन हुआ कि देखा जाय उस मीनार पर चढ़ कर समुद्र कैसा नज़र आता है। बड़ी मुश्किल से ऊपर जाने की इजाज़त मिली। ऊपर गुम्बज में पहुँच कर नीचे देखा, तो समुद्र समुद्र-जैसा न लग कर ऐसे लग रहा था जैसे रेशम की मुचड़ी हुई पतली सुरमई चादर यहाँ से वहाँ तक फैली हो। समुद्र में चलती नावें भी उस ऊँचाई से बहुत छोटी लग रही थीं—अपनी छायाओं और पीछे बनती सफ़ेद लकीरों-समेत उस कपड़े पर काढ़ी गयी आकृतियों-जैसी। दूसरी तरफ़ घने नारियलों के शिखर क्षितिज तक फैले थे। धूप और हवा मिल कर उन में चमचमाती लहरें पैदा कर रही थी। पानी और नारियल के झुण्डों का वह एक-सा लहराव तट-रेखा के पास जा कर मिल गया था। तट-रेखा साँप की तरह बलखाती उत्तरोत्तर दक्षिण-पूर्व की ओर सिमटती गयी थी। वहाँ से उस रेखा को देख कर लगता था कि उस का छोर अब दूर नहीं है—थोड़ा और ऊँचे उठ सकें, तो वह बिन्दु भी नज़र आ सकता है जहाँ जा कर वह समुद्र में खो जाती है।

कोवलम्

कोवलम् बीच त्रिवेन्द्रम् से सात मील दूर है। उसे यह नाम शायद इस लिए दिया गया है कि उस का आकार मलयालम् के अक्षर 'को' से मिलता-जुलता है।

मेरा इरादा रात वहाँ के रेस्ट-हाउस में काटने का था। यह सोच कर कि बिस्तर वहीं मिल जायेगा, मैं अपना सामान त्रिवेन्द्रम् के होटल में ही छोड़ आया था।

जिस बस्ती में बस ने छोड़ा, वहाँ से बीच एक मील पर था। शाम हो चुकी थी। मैं ने स्टाप पर उतर कर अपने आस-पास देखा। कुछ दूर तीन-चार बुड्ढे पत्थरों पर बैठे अपनी ज्ञान-गोष्ठी में लीन थे। एक लड़का साथ-साथ बँधी पन्द्रह-बीस बकरियों को हाँक रहा था। सड़क के मोड़ के पास एक स्त्री चूल्हा जला रही थी। बायीं तरफ़ चाय की दुकान में अंगीठी पर पानी उबल रहा था। मैं पहले एक प्याली चाय पी लेने के लिए उस दुकान के अन्दर चला गया।

वहाँ कितने ही लोग चाय पी रहे थे। एक बाहर के व्यक्ति को आया देख कर उन की बात-चीत रुक गयी। मैं कुछ बेढब-सा महसूस करता एक तरफ़ जा बैठा। जब तक मेरी चाय आयी, तब तक एक अधेड़ व्यक्ति उठ कर मेरे पास आ गया। उस ने आते ही पूछना शुरू किया कि मैं कहाँ से आया हूँ और उस जगह मेरे आने का कारण क्या है। यह जान कर कि मैं दिल्ली की तरफ़ से आया हूँ, वह पास की कुरसी पर बैठ गया और दिल्ली के बारे में तरह-तरह की बातें पूछने लगा।

कुछ देर बाद जब मैं चाय पी कर उस दुकान से निकला, तो वह भी मेरे साथ था। उस की बातें अभी समाप्त नहीं हुई थीं, इस लिए कोवलम् की सड़क

पर भी वह मेरे साथ-साथ चलने लगा। सुनसान सड़क थी। दूर तक कोई आता-जाता दिखाई नहीं दे रहा था। अंधेरा भी उतर आया था। मुझे उस का साथ चलना अच्छा ही लगा, क्यों कि अकेले में हो सकता था किसी ग़लत रास्ते पर भटक जाता। वह मुझ से सब कुछ पूछ चुकने के बाद अब अपने बारे में बता रहा था। वह वहाँ से कुछ मील दूर एक गाँव में रहता था। "हमारे गाँव का ज़मींदार बहुत ज़ालिम आदमी है," वह कह रहा था। "मगर ऊपर तक उस की इतनी पहुँच है, कि कभी उस पर कोई आँच नहीं आती। सारा इलाक़ा उस से थर-थर काँपता है। किसानों पर झूठे मुकदमे बनाना, उन्हें पिटवाना या जान से मरवा देना और उन की बहू-बेटियों की इज्ज़त उतारना, ये सब उस के रोज़ के कारनामे हैं। क्या किसी तरह उस आदमी की रिपोर्ट पण्डित नेहरू तक नहीं पहुँचायी जा सकती?

रास्ता सँकरा था और जगह-जगह उस में फिसलन भी थी। एकाध जगह मेरा पाँव फिसलने को हुआ, तो बाँह से पकड़ कर उस ने मुझे सँभाल लिया। ज़मींदार पर अपने मन का ग़ुबार निकाल चुकने के बाद वह मुझे वहाँ के जीवन के बारे में और-और बातें बताने लगा। आख़िर हम उस दोराहे पर पहुँच गये जहाँ से एक रास्ता रेस्ट-हाउस की तरफ़ जाता था और दूसरा बीच की तरफ़। मैं ने सोचा कि पहले कुछ देर बीच पर बैठते हैं—रेस्ट-हाउस में जा कर तो सोना ही है, वहाँ किसी भी समय जाया जा सकता है।

बीच पर आ कर हम लोग काफ़ी देर रेत पर टाँगें फैलाये बैठे रहे। वह उसी तरह बात करता रहा—अपने बारे में, गाँव के बारे में, वहाँ के लोगों के बारे में—बच्चों की-सी सादगी के साथ। सामने समुद्र का पानी अजब बेबसी के साथ अँधेरे में छटपटा रहा था। लहरों का झाग एक धमाके के साथ रेत से टकराता, फिर हारा-सा लौट जाता। कुछ देर दूर गुनगुनाने के बाद फिर उसी तरह ज़ोर से आ कर टकराता और फिर लौट जाता।

"हम लोग यहाँ आधे भूखे रह कर ज़िन्दगी काटते हैं," वह कह रहा था। "मँहगाई दिन-ब-दिन इस तरह बढ़ती जा रही है कि हम लोग चावल तो क्या, मछली—टेपियोका—भी भर-पेट नहीं खा पाते। वह दिन बहुत खुशकिस्मती का होता है जिस दिन खाने को चावल मिल जाय। कई बार हम लोग सिर्फ़ मूँगे

हुई मछली खा कर रह जाते हैं क्योंकि तेल के लिए पैसे नहीं होते। एक यह समुद्र ही है जिस ने अब तक हमारे मछली के कोटे में कमी नहीं की—पता नहीं किस दिन सरकार इस पर भी प्रतिबन्ध लगा दे और हमें मछली मिलना भी मुश्किल हो जाय।"

मेरा आधा ध्यान उस की बातों में था, आधा समुद्र की तरफ़। लहरें उछल-उछल कर रेत पर गिर-पटक रही थीं—एक आवेश और पागलपन के साथ। जैसे रेत ने कोई चीज़ अपने में ढक रखी थी जिसे उन्हें रेत की सतह तोड़ कर हासिल कर लेना था।

"गरीबी और बेकारी इतनी है कि कई घरों की लड़कियों को मजबूर हो कर पेशा करना पड़ता है,"—मेरा साथी कह रहा था। "दो वक़्त खाने के लिए मछली तो किसी तरह मिलनी ही चाहिए। सरकारी तौर पर वेश्या-वृत्ति पर प्रतिबन्ध है, पर सरकारी हलक़े में ही उन लड़कियों की मांग सब से ज्यादा है। वे रात को त्रिवेन्द्रम् के होटलों में ले जायी जाती हैं, या अपने घास और टाट के घरों में ही छिपे-छिपे यह व्यापार करती हैं। हम लोग आंखों से देखते हुए भी नहीं कह सकते। कहें, तो उन्हें खाना-दाना कहां से ला कर दें?"

अंधेरे के साथ-साथ समुद्र का पागलपन बढ़ता जा रहा था। अब लहरें आस-पास की पूरी रेत को घेर लेने की कोशिश में थीं। जब हमें लगा कि हमारे बैठने की जगह भी अब सुरक्षित नहीं है, तो हम उठ कर रेस्ट-हाउस की तरफ़ चल दिये। पर वहां पहुंचने पर पता चला कि रेस्ट-हाउस में कोई भी कमरा या बिस्तर खाली नहीं है। नौ बज रहे थे। लौट कर त्रिवेन्द्रम् जाने के लिए भी कोई बस नहीं मिल सकती थी। मुझे समझ नहीं आ रहा था कि अब क्या करना चाहिए—बिना बिस्तर के सिवाय रेस्ट-हाउस के और कहां रात काटी जा सकती थी? मैं ने चौकीदार की थोड़ी मिन्नत की, उसे लालच दिया, उस से बहस भी की—पर काम नहीं बना। आखिर उस पर झल्ला कर मैं रेस्ट-हाउस से बाहर चला आया।

मेरा साथी भी मेरी वजह से परेशान था। पर उस के होठों पर हलकी मुसकराहट भी थी। शायद इस लिए कि थोड़ी देर पहले तक मैं जितना गम्भीर और खामोश था, रेस्ट-हाउस में जगह न मिलने से उतना ही बिखर गया था।

बोलने वाले रात का पूरा संकट माथे पर लिये में कुछ देर उस के साथ दो-राहे पर खड़ा रहा—जैसे कि बस्ती, रेस्ट-हाउस और बोन के अलावा वहाँ से किसी चौथी तरफ़ भी जाया जा सकता हो। मेरा साथी भी मन-ही-मन स्थिति का जायज़ा लेता रहा। फिर बोला, घबराइए नहीं, अभी कुछ-न-कुछ इन्तज़ाम हो जायेगा। मैं गाँव में पता करता हूँ—शायद वे लोग स्कूल का कोई कमरा रात-भर के लिए खोल दें।"

वह जिधर को चला, मैं चुपचाप उस के पीछे-पीछे चलता गया। गाँव वहीं पास ही था। एक स्कूल की इमारत को छोड़ कर बाकी सब कच्ची कोठरियाँ थीं। वहाँ पहुँच कर उस ने कुछ लोगों से बात की, तो उन्हों ने स्कूल का कमरा खोल देने में आपत्ति नहीं की। कमरा खुलने पर हम ने वहाँ तीन बेंचें साथ-साथ जोड़ लीं। गाँव के घरों से एक चादर और तकिया भी ला दिया गया। इस तरह रात काटने की व्यवस्था हो गयी। मगर तब एक और समस्या सामने आयी जिसे मैं तब तक भूल रहा था। मुझे भूख लगी थी। रेस्ट-हाउस के चौकीदार से लड़ आया था, इस लिए खाना खाने वहाँ नहीं जाना चाहता था। मैं ने कुछ संकोच के साथ अपने साथी से इस का ज़िक्र किया। उस ने फिर जा कर गाँव के लोगों से बात की। पर पता चला कि खाने को उस समय वहाँ कुछ नहीं मिलेगा—सिर्फ़ किसी लड़के को भेज कर बस्ती से दूध मँगवाया जा सकता है।

एक लड़के को बस्ती भेज कर हम लोग काफ़ी देर स्कूल के बरामदे में बैठे बात करते रहे। जिस आदमी से स्कूल की चाबी ली गयी थी, वह भी अपने दामाद के साथ वहीं आ गया। दो-एक और लोग भी आ गये। उन में अँगरेज़ी बोलने समझने वाला कोई नहीं था, इस लिए मेरा साथी एक तरह से इन्टरप्रेटर का काम करता रहा। बातचीत का विषय वही था—सूखा, बीमारी और बेरोज़गारी। दिल्ली की तरफ़ से आये व्यक्ति को वे अपने पूरे हालात बता देना चाहते थे। एक बुड्ढा बार-बार कह रहा था—गम्भीर स्वर से—कि क्या दिल्ली की सरकार ऐसा कोई क़ानून नहीं बना सकती जिस से हर आदमी को दोनों वक़्त का खाना मिलना अनिवार्य हो जाय? "बैल चारा खाता है, तभी हल जोतता है," उस ने कहा। "उसे चारा न मिले, तो वह काम नहीं कर

मरता। हम लोग सरकार के बैल हैं। क्या सरकार का यह फ़र्ज़ नहीं कि हमें पूरा चारा दे?"

जो लड़का बस्ती गया था, वह दूध ले कर लौट आया। उस के पीछे-पीछे दो व्यक्ति भी आये—एक लकड़ी जैसा बुड्ढा और एक युवा स्त्री। स्त्री जरा पीछे रुकी रही, बुड्ढा हम लोगों के पास आ गया। उस की सफ़ेद दाढ़ी काफ़ी ऊँची-नीची बढ़ी हुई थी। पास आ कर वह कुछ पल मुझे ध्यान से देखता रहा, फिर अपनी भाषा में कुछ कहने लगा। मेरे साथी ने मेरे लिए अनुवाद कर दिया। बुड्ढे का लड़का कुछ दिन पहले घर छोड़ कर चला गया था। किसी ने उसे बताया था कि वह भाग कर दिल्ली गया है। आज यह जान कर कि मैं दिल्ली की तरफ़ से आया हूँ, वह अपनी बहू को साथ ले कर मील-भर से यह पता करने आया था कि दिल्ली में रहते कभी मेरी नजर भूमिनाथन् नाम के किसी लड़के पर तो नहीं पड़ी—लड़के की उम्र लगभग मेरे जितनी है, रंग साँवला है और बात करते हुए वह थोड़ा हकलाता है।

मैं ने उसे बताया कि एक तो मैं दिल्ली का रहने वाला नहीं हूँ, दूसरे दिल्ली-जैसे शहर में किसी को इस तरह पहचान पाना सम्भव नहीं है। बुड्ढा निराश होकर पल-भर कुछ सोचता खड़ा रहा। फिर वापस चल दिया। अपनी बहू के पास पहुँच कर रुक गया। युवा स्त्री कुछ देर धीमे स्वर में उसे कुछ समझाती रही। उस की बात सुन कर वह फिर हम लोगों के पास चला आया। आ कर मुझे लड़के के क़द-काठ और चेहरे-मोहरे के बारे में विस्तार से बताने लगा। पर मैं इस पर भी उसे कोई आश्वासन नहीं दे सका, तो वह अविश्वास की एक नजर मुझ पर डालकर फिर वापस चला गया। इस बार उस की बहू ने भी उस से और बात नहीं की—सिर झुकाये चुपचाप उस के पीछे-पीछे चली गयी।

उन के चले जाने के बाद मुझे बताया गया कि भूमिनाथन् को घर छोड़ कर गये साल से ऊपर हो चुका है। उन लोगों के पास पहले अपनी जमीन थी जो लगान न दे सकने के कारण उन के हाथों से चली गयी थी। घर में बूढ़े बाप और पत्नी के अलावा भूमिनाथन् के दो बच्चे भी थे। मजदूरी कर के वह पाँच आदमियों का पेट नहीं भर पाता था। एक दिन गुस्से में आ कर उस ने

बाप को पीट दिया। फिर इस बात का मन को इतना रंज लगा कि उसी रात घर छोड़ कर चला गया। कुछ लोगों का खयाल था कि उस ने वहाँ से जा कर आत्महत्या कर ली थी। बुड्ढा रात-दिन उस की याद में रोता रहता था, इस लिए लोगों ने उस से कह दिया था कि भूमिनायन् मरा नहीं है, दिल्ली में है—एक आदमी ने अपनी आँखों से उसे वहाँ देखा है।

"अब इसकी बहू मजदूरी कर के घर का खर्च चलाती है। तब इसी बात पर बाप-बेटे में लड़ाई हुई थी। लड़का चाहता था कि उस की बीवी भी साथ मजदूरी करे, पर बाप इस के लिए राजी नहीं था। उस का हठ था कि उन के घर की कोई लड़की-औरत मजदूरी करने नहीं जा सकती। अब भी वही घर है, वही यह खुद है जो बहू की कमाई खा कर चुपचाप पड़ा रहता है। आदमी का पेट है—कब तक भूखा रह सकता है?"

थोड़ी देर में बुड्ढा फिर वापस आता दिखाई दिया। उस की बहू अब उस के साथ नहीं थी। इस बार आ कर वह बोला कि मैं लौट कर दिल्ली जाऊँ तो खयाल जरूर रखूँ। हो सकता है कभी उस पर मेरी नजर पड़ जाय। उस हालत में मैं उसे चिट्ठी डाल दूँ। और वह नये सिरे से मुझे लड़के के नयन-नक्श और रंग-रूप आदि के विषय में बताने लगा।

मैं ने इस बार कह दिया कि मैं दिल्ली जाऊँगा, तो जरूर खयाल रखूँगा। बुड्ढे की आँखें भर आयीं। वह चलने के लिए तैयार हो कर आँखें पोंछता हुआ बोला कि सुबह मैं वहाँ से जल्दी न चला जाऊँ, उस का इन्तजार कर लूँ—वह आ कर मुझे अपना पता लिखा एक पोस्ट कार्ड दे जायेगा।

आख़िरी चट्टान

कन्या-कुमारी। सुनहले सूर्योदय और सूर्यास्त की भूमि।

केप होटल से आगे चल कर साथ टैंक के बायीं तरफ़, समुद्र के अन्दर से उभरी स्याह चट्टानों में से एक पर गया। और कुछ देर तक भारत के स्थल-भाग की आखिरी चट्टान को देखता रहा। पृष्ठभूमि में कन्या-कुमारी के मन्दिर की लाल और सफ़ेद लकीरें चमक रही थीं। अरब सागर, हिन्द महासागर और बंगाल की खाड़ी—तीनों के संगम-स्थल-सी वह चट्टान, जिस पर कभी स्वामी विवेकानन्द ने समाधि लगायी थी, हर तरफ़ से पानी की मार सहती हुई स्वयं भी समाधिस्थ-सी लग रही थी। हिन्द महासागर की ऊँची-ऊँची लहरें मेरे आस-पास की स्याह चट्टानों से टकरा रही थीं। बलखाती लहरें रास्ते की नुकीली चट्टानों से कटती हुई आती थीं जिस से उन के ऊपर चूरा बूँदों की जालियाँ बन जाती थीं। मैं देख रहा था और अपनी पूरी चेतना से महसूस कर रहा था—शक्ति का विस्तार, विस्तार की शक्ति। तीनों तरफ़ से क्षितिज तक पानी-ही-पानी था, फिर भी सामने का क्षितिज, हिन्द महासागर का, अपेक्षया अधिक दूर और अधिक गहरा जान पड़ता था। लगता था कि उस ओर दूसरा छोर है ही नहीं। तीनों ओर के क्षितिज को आँखों में समेटता मैं कुछ देर भूला रहा कि मैं मैं हूँ, एक जीवित व्यक्ति, दूर से आया यात्री, एक दर्शक। उस दृश्य के बीच में जैसे दृश्य का एक हिस्सा बन कर खड़ा रहा—बड़ी-बड़ी चट्टानों के बीच एक छोटी-सी चट्टान। जब अपना होश हुआ, तो देखा कि मेरी चट्टान भी तब तक बढ़ते पानी में काफ़ी घिर गयी है। मेरा पूरा शरीर सिहर गया। मैं ने एक नजर फिर सामने के उमड़ते विस्तार पर डाली और पास की एक सुरक्षित चट्टान पर कूद कर दूसरी चट्टानों पर से होता हुआ किनारे पर पहुँच गया।

पच्छिमी क्षितिज में सूर्य धीरे-धीरे नीचे जा रहा था। मैं सूर्यास्त की दिशा में चलने लगा। दूर पच्छिमी तट-रेखा के एक मोड़ के पीली रेत का एक ऊँचा टीला नजर आ रहा था। सोचा उस टीले पर जा कर सूर्यास्त देखूँगा।

यात्रियों की कितनी ही टोलियाँ उस दिशा में जा रही थीं। मेरे आगे कुछ मिशनरी युवतियाँ मोक्ष की समस्या पर विचार करती चल रही थीं। मैं उन के पीछे-पीछे चलने लगा—चुपके से मोक्ष का कुछ रहस्य पा लेने के लिए। यूँ उन की बातों से कहीं रहस्यमय आकर्षण उन के युवा शरीरों में था और पीली रेत की पृष्ठभूमि में उन के लबादों के हिलते हुए स्याह-सफ़ेद रंग बहुत आकर्षक

लग रहे थे। मोश का रहस्य अभी खोज में ही था कि हम लोग टीले पर पहुँच गये। यह वह 'सैण्ड हिल' थी जिस की चर्चा मैं वहाँ पहुँचने के बाद से ही सुन रहा था। सैण्ड हिल पर बहुत-से लोग थे। आठ-दस नवयुवतियाँ, छह-सात नवयुवक और दो-तीन गान्धी टोपियों वाले व्यक्ति। वे शायद सूर्यास्त देख रहे थे। गवर्नमेण्ट गेस्ट हाउस के बैरे उन्हें सूर्यास्त के समय की काफ़ी पिला रहे थे। उन लोगों के वहाँ होने से सैण्ड हिल बहुत रंगीन हो उठी थी। कन्या-कुमारी का सूर्यास्त देखने के लिए उन्हों ने विशेष रुचि के साथ सुन्दर रंगों का रेशम पहना था। हवा समुद्र की तरह उस रेशम में भी लहरें पैदा कर रही थीं। मिशनरी युवतियाँ वहाँ आ कर थकी-सी एक तरफ़ बैठ गयीं—उस पूरे कैनवस में एक तरफ़ छिटके हुए कुछ बिन्दुओं की तरह। उन से कुछ दूर का एक रंग-हीन बिन्दु, मैं, ज़्यादा देर अपनी जगह स्थिर नहीं रह सका। सैण्ड हिल से सामने का पूरा विस्तार तो दिखाई दे रहा था, पर अरब सागर की तरफ़ एक और ऊँचा टीला था जो उधर के विस्तार को ओट में लिये था। सूर्यास्त पूरे विस्तार को पृष्ठभूमि में देखा जा सके, इस के लिए मैं कुछ देर सैण्ड हिल पर रुका रह कर आगे उस टीले की तरफ़ चल दिया। पर रेत पर अपने अकेले क़दमों को घसीटता वहाँ पहुँचा, तो देखा कि उस से आगे उस से भी ऊँचा एक और टीला है। जल्दी-जल्दी चलते हुए मैं ने एक के बाद एक कई टीले पार किये। टाँगें थक रही थीं, पर मन थकने को तैयार नहीं था। हर अगले टीले पर पहुँचने पर लगता कि शायद अब एक ही टीला और है, उस पर पहुँच कर पच्छिमी क्षितिज का खुला विस्तार अवश्य नज़र आ जायेगा। और सचमुच एक टीले पर पहुँच कर वह खुला विस्तार सामने फैला दिखाई दे गया—वहाँ से दूर तक रेत की लम्बी ढलान थी, जैसे वह टीले से समुद्र में उतरने का रास्ता हो। सूर्य तब पानी से थोड़ा ही ऊपर था। अपने प्रयत्न की सार्थकता से सन्तुष्ट हो कर मैं टीले पर बैठ गया—ऐसे जैसे वह टीला संसार की सब से ऊँची चोटी हो, और मैं ने, सिर्फ़ मैं ने, उस चोटी को पहली बार सर किया हो।

पीछे दायीं तरफ़ दूर-दूर हट कर उगे नारियलों के झुरमुट नज़र आ रहे थे। गूँजती हुई तेज़ हवा से उन की टहनियाँ ऊपर को उठ रही थीं। आकाश की तरफ़ उठ कर हिलती हुई वे टहनियाँ ऐसे लग रही थीं जैसे उन्मुक्त रति के

धारों में किन्हीं नाग वन-पुतलियों की बाँहें । पश्चिमी तट के साथ-साथ सूखी पहाड़ियों की एक शृंखला दूर तक चली गयी थी जो सामने फैली रेत के कारण बहुत रूखी, बीहड़ और वीरान लग रही थी । सूर्य पानी की सतह के पास पहुँच गया था । सुनहली किरणों ने पीली रेत को एक नया-सा रंग दे दिया था । उस रंग में रेत इस तरह चमक रही थी जैसे अभी-अभी उस का निर्माण कर के उसे वहाँ उँडेला गया हो । मैं ने उस रेत पर दूर तक बने अपने पैरों के निशानों को देखा । लगा जैसे रेत का कुँआरापन पहली बार उन निशानों से टूटा हो । इस से मन में एक सिहरन भी हुई, हलकी उदासी भी घिर आयी ।

सूर्य का गोला पानी की सतह से छू गया । पानी पर दूर तक सोना-ही-सोना घुल आया । पर वह रंग इतनी जल्दी-जल्दी बदल रहा था कि किसी भी एक क्षण के लिए उसे एक नाम दे सकना असम्भव था । सूर्य का गोला जैसे एक बेबसी में पानी के लावे में डूबता जा रहा था । धीरे-धीरे वह पूरा डूब गया और कुछ क्षण पहले जहाँ सोना बह रहा था, वहाँ अब लहू बहता नजर आने लगा । कुछ और क्षण बीत ने पर वह लहू भी धीरे-धीरे बैंजनी और बैंजनी से काला पड़ गया । मैं ने फिर एक बार मुड़ कर दायीं तरफ़ पीछे देख लिया । नारियलों की टहनियाँ उसी तरह हवा में ऊपर उठी थीं, हवा उसी तरह गूँज रही थी, पर पूरे दृश्यपट पर स्याही फैल गयी थी । एक-दूसरे से दूर खड़े झुर-मुट, स्याह पड़ कर, जैसे लगातार सिर धुन रहे थे और हाथ-पैर पटक रहे थे । मैं अपनी जगह से उठ खड़ा हुआ और अपनी मुट्ठियाँ भींचता-खोलता कभी उस तरफ़ और कभी समुद्र की तरफ़ देखता रहा ।

अचानक खयाल आया कि मुझे वहाँ से लौट कर भी जाना है । इस खयाल से ही शरीर में कँप-कँपी भर गयी । दूर सैण्ड हिल की तरफ़ देखा । वहाँ स्याही में डूबे कुछ धुँधले रंग हिलते नजर आ रहे थे । मैं ने रंगों को पहचानने की कोशिश की, पर उतनी दूर से आकृतियों को अलग-अलग कर सकना सम्भव नहीं था । मेरे और उन रंगों के बीच स्याह पड़ती रेत के कितने ही टीले थे । मन में डर समाने लगा कि क्या अँधेरा होने से पहले मैं उन सब टीलों को पार कर के जा सकूँगा ? कुछ क़दम उस तरफ़ बढ़ा भी । पर लगा कि नहीं । उस रास्ते से जाऊँगा, तो शायद रेत में ही भटकता रह जाऊँगा । इस लिए सोचा

बेहतर है नीचे समुद्र-तट पर उतर जाऊँ—तट का रास्ता निश्चित रूप से केप होटल के सामने तक ले जायेगा। निर्णय तुरन्त करना था, इस लिए बिना और सोचे मैं रेत पर बैठ कर नीचे तट की तरफ फिसल गया। पर तट पर पहुँच कर फिर कुछ क्षण बढ़ते अँधेरे की बात भूला रहा। कारण था तट की रेत। यूँ पहले भी समुद्र-तट पर कई-कई रंगों की रेत देखी थी—सुरमई, खाकी, पीली और लाल। मगर जैसे रंग उस रेत में थे, वैसे मैं ने पहले कभी कहीं की रेत में नहीं देखे थे। कितने ही अनाम रंग थे वे, एक-एक इंच पर एक-दूसरे से अलग'''और एक-एक रंग कई-कई रंगों की झलक लिये हुए। काली घटा और घनी लाल आँधी को मिला कर रेत के आकार में ढाल देने से रंगों के जितनी तरह के अलग-अलग सम्मिश्रण पाये जा सकते थे, वे सब वहाँ थे—और उन के अतिरिक्त भी बहुत-से रंग थे। मैं ने कई अलग-अलग रंगों की रेत को हाथ में ले कर देखा और मसल कर नीचे गिर जाने दिया। जिन रंगों को हाथों से नहीं छू सका, उन्हें पैरों से मसल दिया। मन था कि किसी तरह हर रंग की थोड़ी-थोड़ी रेत अपने पास रख लूँ। पर उस का कोई उपाय नहीं था। यह सोच कर कि फिर किसी दिन आ कर उस रेत को बटोरूँगा, मैं उदास मन से वहाँ से आगे चल दिया।

समुद्र में पानी बढ़ रहा था। तट की चौड़ाई धीरे-धीरे कम होती जा रही थी। एक लहर मेरे पैरों को भिगो गयी, तो सहसा मुझे खतरे का एहसास हुआ। मैं जल्दी-जल्दी चलने लगा। तट का सिर्फ़ तीन-तीन चार-चार फ़ुट हिस्सा पानी से बाहर था। लग रहा था कि जल्दी ही पानी उसे भी अपने अन्दर समा लेगा। एक बार सोचा कि खड़ी रेत से ही कर फिर ऊपर चला जाऊँ। पर वह स्याह पड़ती रेत इस तरह दीवार की तरह उठी थी कि उस रास्ते ऊपर जाने की कोशिश करना ही बेकार था। मेरे मन में खतरा बढ़ गया। मैं दौड़ने लगा। दो-एक और लहरें पैरों के नीचे तक आ कर लौट गयीं। मैं ने जूता उतार कर हाथ में ले लिया। एक ऊँची लहर से बच कर इस तरह दौड़ा जैसे सचमुच वह मुझे अपनी लपेट में लेने आ रही हो। सामने एक ऊँची चट्टान थी। वक़्त पर अपने को सँभालने की कोशिश की, फिर भी उस से टकरा गया। बाँहों पर हल्की खरोंच आ गयी, पर ज़्यादा चोट नहीं लगी।

चट्टान पानी के अन्दर तक चली गयी थी—ढूह बना। मगर आगे जाने के लिए पानी में उतरना आवश्यक था। पर उस गहन पानी की तरफ़ पाँव बढ़ाने का मेरा साहस नहीं हुआ। मैं चट्टान की नोकों पर पैर रखता किसी तरह उस के ऊपर पहुँच गया। सोचा सीधे खड़े रहने की अपेक्षा यह अधिक सुरक्षित होगा। पर ऊपर पहुँच कर लगा जैसे मेरे साथ एक मज़ाक़ किया गया हो। चट्टान के उस तरफ़ सड़क का खुला मैदान था—लगभग सौ फ़ुट का। कितने ही लोग वहाँ टहल रहे थे। ऊपर सड़क पर आने के लिए वहाँ से रास्ता भी बना था। मन से डर निकल जाने से मुझे अपना-आप काफ़ी हल्का लगा और मैं चट्टान से नीचे कूद गया।

रात। केप होटल का लॉन। अँधेरे में हिन्द महासागर को काटती कुछ स्याह लकीरें—एक पौधे की टहनियाँ। नीचे सड़क पर टार्च जलाता-बुझाता एक आदमी। दक्षिण-पूर्व के क्षितिज में एक जहाज़ की मद्धिम-सी रोशनी।

मन बहुत बेचैन था—बिना पूरी तरह भीगे सूखती मिट्टी की तरह। जगह मुझे इतनी अच्छी लगी थी कि मन था अभी कई दिन, कई सप्ताह, वहाँ रहूँ। पर अपने भुलक्कड़पन की वजह से एक ऐसी हिमाक़त कर आया था कि लग रहा था वहाँ से तुरन्त लौट जाना पड़ेगा। अपना सूटकेस खोलने पर पता चला था कि कनानोर में सत्रह दिन रह कर जो अस्सी-नब्बे पन्ने लिखे थे, वे वहीं मेज़ की दराज़ में छोड़ आया हूँ। अब मुझे दो में से एक चुनना था। एक तरफ़ था कन्या-कुमारी का सूर्यास्त, समुद्रतट और वहाँ की रेत। दूसरी तरफ़ अपने हाथ के लिखे काग़ज़ जो शायद अब भी सेवाय होटल की एक दराज़ में बन्द थे। मैं देर तक बैठा सामने देखता रहा—जैसे कि पौधे की टहनियों या उन के हाशिये में बन्द महासागर के पानी से मुझे अपनी समस्या का हल मिल सकता है।

कुछ देर में एक गीत का स्वर सुनाई देने लगा जो धीरे-धीरे पास आता गया। एक कान्वेण्ट की बस होटल के कम्पाउण्ड में आ कर रुक गयी। बस में बैठी लड़कियाँ अँगरेज़ी में एक गीत गा रही थीं जिस में समुद्र के सितारे को सम्बोधित किया गया था। उस गीत को सुनते हुए और दूर जहाज़ की रोशनी

के ऊपर एक चमकते सितारे को देखते हुए मन और उदास होने लगा। गहरी साँस के सुरमई रंग में रंगी वह आवाज़ मन की गहराई के किसी कोमल रोयें को हलके-हलके सहला रही थी। लग रहा था कि उस रोयें की ज़िद शायद मुझे वहाँ से जाने नहीं देगी। लेकिन उस से भी ज़िद्दी एक और रोयाँ था—दिमाग़ के किसी कोने में अटका—जो सुबह वहाँ से जाने वाली बसों का टाइम-टेबल मुझे बता रहा था। गीत के स्वरों की प्रतिक्रिया में साथ टाइम-टेबल के हिन्दसे जुड़ते जा रहे थे—पहली बस सात पन्द्रह, दूसरी आठ पैंतीस, तीसरी···। थोड़ी देर में बस लौट गयी, गीत के स्वर विलीन हो गये और मन में केवल हिन्दसों की चर्खी चलती रह गयी।

सूर्योदय। हम आठ आदमी 'विवेकानन्द चट्टान' पर बैठे थे। चट्टान तट से सौ-सवा-सौ गज आगे समुद्र के बीच जा कर है—वहाँ जहाँ बंगाल की खाड़ी की भौगोलिक सीमा समाप्त होती है। मेरे अलावा तीन कन्या-कुमारी के बेकार नवयुवक थे जिन में से एक ग्रेजुएट था। चार मल्लाह थे जो एक छोटी-सी मछुआ नाव में हमें वहाँ लाये थे। नाव क्या थी, रबड़-पेड़ के तीन तनों को साथ-साथ जोड़ लिया गया था, बस। नीचे की नुकीली चट्टानों और ऊपर की ऊँची-ऊँची लहरों से बचाते हुए मल्लाह नाव को उस तरफ ला रहे थे, तो मैं ने आसमान की तरफ देखते हुए उतनी देर अपनी चेतना को स्थगित रखने की चेष्टा की थी, अपने अन्दर के डर को दिखावटी उदासीनता से ढक रखना चाहा था। पर जब चट्टान पर पहुँच गये, तो डर मेरी टाँगों में उतर गया क्योंकि वहाँ बैठे हुए भी वे हलके-हलके काँप रही थीं।

ग्रेजुएट नवयुवक मुझे बता रहा था कि कन्या-कुमारी की आठ हज़ार की आबादी में कम से कम चार-पाँच सौ शिक्षित नवयुवक ऐसे हैं जो बेकार हैं। उन में से सौ के लगभग ग्रेजुएट हैं। उन का मुख्य धन्धा है नौकरियों के लिए अर्ज़ियाँ देना और बैठ कर आपस में बहस करना। वह खुद वहाँ फोटो-एल्बम बेचता था। दूसरे नवयुवक भी उसी तरह के छोटे-मोटे काम करते थे। "हम लोग सीपियों का गूदा खाते हैं और दार्शनिक सिद्धान्तों पर बहस करते हैं,"

वह कह रहा था। "इस चट्टान से इतनी प्रेरणा तो हमें मिलती ही है।" मुझे दिखाने के लिए उस ने गड्डों में से एक सीपी ले कर उसे तोड़ा और उस का गूदा मुँह में डाल लिया।

पानी और आकाश में तरह-तरह के रंग झिलमिलाकर, छोटे-छोटे द्वीपों की तरह समुद्र में बिखरी स्याह चट्टानों की ओट से सूर्य उदित हो रहा था। घाट पर बहुत-से लोग उगते सूर्य को अर्घ्य देने के लिए एकत्रित थे। घाट से थोड़ा हट कर गवर्नमेंट गेस्ट-हाउस के बैरे सरकारी मेहमानों को सूर्योदय के समय की काफ़ी पिला रहे थे। दो स्थानीय नवयुवतियाँ उन्हें अपनी टोकरियों से शंख और मालाएँ दिखला रही थीं। वे लोग दोनों काम साथ-साथ कर रहे थे—मालाओं का मोल-तोल और अपने बाइनाक्युलर्ज़ से सूर्य-दर्शन। मेरा साथी अब मोहल्ले-मोहल्ले के हिसाब से मुझे बेकारी के आँकड़े बता रहा था। बहुत-से कटल-फ़िश हमारे आसपास तैर रहे थे—यहाँ की बेकारी की समस्या और सूर्योदय की विशेषता, इन दोनों से बे-लाग।

मेरे साथियों का कहना था कि लौटते हुए नाव को घाट की तरफ़ से घुमा-कर लायेंगे, हालाँकि मल्लाह उस तूफ़ान में उधर जाने के हक़ में नहीं थे। बहुत कहने पर मल्लाह किसी तरह राजी हो गये और नाव को घाट की तरफ़ ले चले। नाव विवेकानन्द चट्टान के ऊपर से घूम कर लहरों के थपेड़े खाती उस तरफ़ बढ़ने लगी। वह रास्ता सचमुच बहुत खतरनाक था—जिस रास्ते से हम आये थे, उस से कहीं ज्यादा। नाव इस तरह लहरों के ऊपर उठ जाती थी कि लगता था नीचे आने तक जरूर उलट जायेगी। फिर भी हम घाट के बहुत क़रीब पहुँच गये। ग्रेजुएट नवयुवक घाट से आगे की चट्टान की तरफ़ इशारा करके कह रहा था, "यहाँ आत्महत्याएँ बहुत होती हैं। अभी दो महीने पहले एक लड़की ने उस चट्टान से कूद कर आत्म-हत्या कर ली थी।"

मैं ने सरसरी तौर पर आश्चर्य प्रकट कर दिया। मेरा ध्यान उस की बात में नहीं था। मैं आँखों से तय करने की कोशिश कर रहा था कि घाट और नाव के बीच अब कितना फ़ासला बाक़ी है।

"वह आत्म-हत्या करने के लिए ही यहाँ आयी थी," ग्रेजुएट नवयुवक कह रहा था। "सुना है उसे कुँवारेपन में ही बच्चा होने वाला था। अर्णाकुलम्

और त्रिवेन्द्रम् के बीच के किसी गाँव की थी वह। बाद में मुट्टम् के पास उस का शरीर लहरों ने किनारे पर निकाल दिया था।"

एक लहर ने नाव को इस तरह धकेल दिया कि मुश्किल से वह उलटते-उलटते बची। आगे तीन-चार चट्टानों के बीच एक भँवर पड़ रहा था। नाव अचानक एक तरफ से भँवर में दाखिल हुई और दूसरी तरफ से निकल आयी। इस से पहले कि मल्लाह उसे सँभाल पाते, वह फिर उसी तरह भँवर में दाखिल हो कर घूम गयी। मुझे कुछ क्षणों के लिए भँवर और उस से घूमती नाव के सिवा और किसी चीज़ की चेतना नहीं रही। चेतना हुई जब भँवर में तीन-चार चक्कर खा लेने के बाद नाव किसी तरह उस से बाहर निकल आयी। यह अपने-आप या मल्लाहों की कोशिश से, मैं नहीं कह सकता। भँवर से कुछ दूर आ जाने पर ग्रेजुएट नवयुवक ने बताया कि हम उस चट्टान को लगभग छू कर आये हैं जिस पर से कूद कर उस नवयुवती ने कन्या-कुमारी की साक्षी में आत्म-हत्या की थी।

पर मैं ने तब तक उस चट्टान की तरफ ध्यान से नहीं देखा जब तक हम किनारे के बहुत पास नहीं पहुँच गये। यह भी वहाँ पहुँच कर जाना कि घाट की तरफ से आने का इरादा छोड़ कर मल्लाह उसी रास्ते से नाव को वापस लाये हैं जिस रास्ते से पहले ले गये थे।

कन्याकुमारी के मन्दिर में पूजा की घण्टियाँ बज रही थीं। भक्तों की एक मण्डली अन्दर जाने से पहले मन्दिर की दीवार के पास रुक कर उसे प्रणाम कर रही थी। सरकारी मेहमान गैस्ट-हाउस का तरफ लौट रहे थे। हमारी नाव और किनारे के बीच हलकी धूप में कई एक नावों के पाल और कइल-कावों के पंख एक-से चमक रहे थे। मैं अब भी आँखों से बाँध की दूरी नाप रहा था और मन में बसों का टाइम-टेबल दोहरा रहा था। तीसरी बस नौ चालीस पर, चौथी....।[1]

■ ■ ■

१. उस के बाद एक शाम और वहाँ रुक कर कन्नानोर लौट गया। वहाँ आ कर अपने लिखे कागज़ मिल तो गये, पर तब तक चौकीदार ने उन्हें मोड़ कर उन की चोंगी बना ली थी। कागज़ों पर लिखाई एक ही तरफ थी, इस लिए उस के खाली हिस्सों पर उस ने अपना हिसाब लिखना शुरू कर दिया था। जब मैं ने वह चोंगी उस से ली, तो उसे शायद उस से कम निराशा नहीं हुई जितनी कन्या-कुमारी पहुँच कर अपना मुसव्वदा खोलने पर मुझे हुई थी।

६९४४

ઈ૨૫

पता आर-५२२, न्यू राजेन्द्र नगर,
नयी दिल्ली-५

अन्य रचनाएँ :

उपन्यास : अँधेरे बन्द कमरे, न आने वाला कल। नाटक : आषाढ़ का एक दिन, लहरों के राजहंस, आधे और अधूरे (यन्त्रस्थ)। कहानी-संग्रह : आज के साये, रोयें-रेशे, एक-एक दुनिया (यन्त्रस्थ), मिले-जुले चेहरे (यन्त्रस्थ)। निबन्ध-संग्रह : परिवेश।